Chap-2

:: द्वितीय अध्याय ::

:: आलोच्य उपन्यासों की कथ्य-चेतना ::

:: द्वितीय अध्याय ::

:: आलोच्य उपन्यासों की कथ्य-चेतना ::

प्रास्ताविक :

मेरे शोध-प्रबंध का विषय हिन्दी के तीन बहुचर्चित उपन्यास – 'राग दरबारी', 'मुझे चाँद चाहिए' और 'काशी का अस्सी' – से सम्बद्ध है। मेरा उपक्रम इस उपन्यास-त्रयी की भाषिक-संरचना को तलाशने का है। भाषिक-संरचना की तलाश के लिए इन उपन्यासों की कथ्य-चेतना को भली भांति समझ लेना अति आवश्यक है, क्योंकि बिना उसके विषय के साथ न्याय कर पाना मुश्किल हो जाता है। अतः इस अध्याय में क्रमशः उक्त तीनों उपन्यासों की कथ्य-चेतना को समझने-समझाने का यत्न किया है। परंतु उसके पूर्व 'कथ्य-चेतना' से हमारा क्या तात्पर्य है उसे भी स्पष्ट करना होगा। उसके बाद सीधे अध्यायगत विषय पर आते हुए उन-उन उपन्यासों की कथ्य-चेतना को स्पष्ट किया गया है। उपन्यास जिस काल-क्रमिकता से आये है, उसी क्रमिकता मे उनको रखा गया है।

'कथ्य-चेतना' से हमारा तात्पर्य :

पूर्ववर्ती पृष्ठों में इसे एकाधिक बार कहा गया है कि उपन्यास कथा-साहित्य का प्रकार होते हुए भी महज़ कथा कहना-उसका उद्देश्य या लक्ष्य नहीं है। फकत कथा तो वे कहते हैं जिनका लक्ष्य लोगों का मनोरंजन करना होता है। केवल मनोरंजन करना या उपदेश देना उपन्यासकार का लक्ष्य नहीं है। वस्तुतः उपन्यास कथा से कुछ ऊपर की वस्तु है। कथा या कहानी तो महज़ एक बहाना है, वस्तुतः लेखक उसके द्वारा कुछ और कहना चाहता है। उसका उद्देश्य, उसका लक्ष्य कुछ और है। वह समाज को अपनी रचना के द्वारा कोई संदेश देना चाहता है। 'गोदान' होरी और धनिया की कहानी – मात्र नहीं है। उसके द्वारा प्रेमचंद यह कहना चाहते हैं, यह बताना चाहते हैं कि हमारे देश में, हमारे समाज में, किसान

का शोषण समाज का हर तबका करता है, यहाँ तक कि जाति और बिरादरी वाले भी। किसान की मुख्य समस्या है ऋण की समस्या, कर्ज की समस्या। किसान एक बार कर्जे की गिरफ़्त में आ जाता है तो ज़िन्दगीभर उससे मुक्त नहीं हो पाता है। सरकारी अमले और धर्म के ठेकेदार भी उस शोषण-लीला में शामिल है। ये सब बताना चाहते हैं प्रेमचंद। 'कथ्य-चेतना' से हमारा तात्पर्य यही है कि उपन्यासकार अपने उपन्यास के द्वारा क्या कहना चाहता है? उसका उद्देश्य क्या है? उसका संदेश क्या है? जीवन-विषयक उसकी अवधारणा क्या है?

(क) राग दरबारी की कथ्य-चेतना :

'कथ्य-चेतना' को भलीभाँति आत्मसात करने के लिए प्रथमत: उसकी कथाव्स्तु और पात्र-सृष्टि की प्रकृति को समझना आवश्यक हो जाता है। अत: इस प्रत्येक उप-विभाग को हमने तीन भागों में विभक्त किया है। -- (I) कथावस्तु, (2) पात्र-सृष्टि और (3) कथ्य-चेतना।

(I) 'राग दरबारी' उपन्यास की कथावस्तु :

श्रीलाल शुक्ल द्वारा प्रणीत 'राग दरबारी' स्वातंत्र्योंत्तर मोहभंग की स्थिति को रूपायित करने वाला उपन्यास है। उसका प्रकाशन सन् 1968 में हुआ था और प्रकाशित होते ही 'मैला आँचल' (रेणु) की भाँति इसने भी साहित्यिक तबकों में हलचल मचा दी थी। श्रीलाल शुक्ल व्यग्यकार है, अत: उन्होने अपना 'फ़ोर्म' भी व्यग्य का ही चुना है। यह एक प्रश्न हो सकता है, बल्कि होना चाहिए, कि स्वाधीनता के उपरान्त ऐसा क्या हुआ कि साहित्य के सभी रूपों में व्यंग्य-साहित्य की पुष्कलता पहले के किसी भी काल की तुलना में अनेकगुना बढ़ गयी। कारण स्पष्ट है। आजादी से भारतीय जनता की, भारतीय बुद्धिजीवियों की, लेखकों और कलाकारों की, जो अपेक्षाएं थीं उनकी पूर्ति नहीं हुई। इतना ही नहीं, बरअक्शं विपरीत हुआ। बकौल हरिशंकर पारसाई के आजादी महज 'सत्ता का हस्तांतरण' होकर रह गई। पहले अंग्रेज लोग हमारे देश को एक 'डीश' समझकर खाते थे, छुरी-काँटे के साथ, अब ये देशी खानेवाले टूट पड़े हैं दुर्भिक्षियों की भांति अपने तरीकों से।[1] सच ही हम अपने देश के नेताओं और लोगों को दो ही वर्गों में रख

सकते है; (1) खानेवाले जो खाते है, खाते थे और खायेंगे और (2) नहीं खानेवाले पर जो खाना चाहते हैं। यह दूसरे वर्ग के लोग थोंड़े उपद्रवी है और आयेदिन भ्रष्टाचार, अनाचार, अत्याचार, आदि 'आचारों' के माध्यम से अपने जीवन की रोटी को जायकेदार बनाने की कोशिश करते है।[2]

अभिप्राय यह कि देश की वास्तविकता में कोई आमूलचूल बदलाव तो नहीं आया, बल्कि स्थितियां भयंकर से भयंकरतर होती गई है। इसने मोहभंग की स्थिति का निर्माण किया और यह तो दो और दो चार जैसी बात है कि ऐसा करारा मोहभंग 'व्यंग्य' को ही जन्म दे सकता है। 'रागदरबारी' उसी मोहभंग की साहित्यिक परिणति है।

'राग दरबारी' उपन्यास की कोई बंधी-बंधाई कथा नहीं है। शिवपालगंज गांव और वहां के लोगों का गंजहापन ही कथा के केन्द्र में है। कुछ पात्र और कुछ स्थितियां और कुछ झलकियां उपन्यास को कलेवर प्रदान करते हैं। रंगनाथ जो यूनिवर्सिटी में इतिहास का विद्यार्थी है और रीसर्च कर रहा है वह अपने मामा वैद्यजी के यहां शिवपालगंज में आता है। शिवपालगंज आने के उसके तीन उद्देश्य हैं -- छुट्टियां बिताने, थीसिस लिखने और कुछ अपना स्वस्थ्य बनाने। लोग छट्टियां बिताने हिल-स्टेशनों या दर्शनीय स्थानों पर जाते हैं। रंगनाथजी मामाजी के यहां आये हैं। इतिहास के शोध-छात्र होने के नाते वे ऐतिहासिक स्थानों पर भी जा सकते थे। थीसिस लिखने लोग शहर जाते हैं, लायब्ररियों की खाक छानते हैं, पर रंगनाथजी शिवपालगंज आते है। स्वास्थ्य बनाने के लिए लोग अस्पतालों में जाते हैं, डाक्टरों का संपर्क करते हैं, 'जीम' जाते हैं, शहरों के बागों और पार्कों मे 'जोगिंग' करते हैं, पर रंगनाथजी शिवपालगंज आते हैं, क्योंकि रंगनाथ सचमुच में रंगनाथ है। ठेठ गंवारों और लुच्चों में गंवारों और लुच्चों की तरह मामाजी के दरबार के नवरत्नों में शोभायमान हो रहे हैं।

वैद्यजी शिवपालगंज के सर्वेसर्वा है। छंगामल इण्टर कालेज, को-ओपरेटिव यूनियन तथा स्थानिक ग्रामसभा सभी में वे महत्वपूर्ण पदों पर कार्य कर रहे हैं। आजादी के बाद हमारी ग्रामीण राजनीति में कैसे-कैसे लोग काबिज़ हो गए है

उसका बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्र लेखक ने खींचा है। सनीचर जो हमेशा धारीदार अण्डरवेयर में रहता है, वैद्यजी के इशारों पर उसे ग्रामसभा का सरपंच चुन लिया जाता है। यहां लेखक ने चुनाव के हथकण्डों का भी व्यंग्यात्मक लेकिन यथार्थ चित्रण किया है। सनीचर जैसे व्यक्ति का ग्रामसभा के चुनाव में सरपंच के लिए चुना जाना ही अपने आप में व्यंग्य की पराकाष्ठा है।

इण्टर कालेज का नाम 'छंगामल' रखा गया है जो अपने-आप में सांकेतिक और व्यंग्यात्मक है। पढ़ाई के अलावा यहां सबकुछ होता है। आज़ादी के बाद हमारी शिक्षा-संस्थाएं राजनीति का अड़डा बनती जा रही हैं। कालेज के प्रिंसिपल सुबह-शाम वैद्यजी के दरबार में हाजिरी बजाते है और साथ में भंग का मजा भी लूटते हैं. जब वे गुस्से में आते हैं तब अवधी भाषा बोलने लगते हैं। उनकी चुस्ती और दुरुस्ती दो बातों में खास दिखती हैं – येन केन प्रकारेण कालेज में अपने स्थान को सुरक्षित रखना और इसलिए अच्छे और योग्य लोगों को कालेज में आने ही न देना और विभिन्न स्कीमें बनाकर सरकार से संस्था के लिए ज्यादा से ज्यादा पैसा बटोरना।

उपन्यास का प्रारंभ उस घटना से होता है जहां रंगनाथ शिवपालगंज आने के लिए ट्रेन चुक जाने से एक ट्रक में बैठता है। ट्रक का गियर बारबार फिसलकर न्यूट्रल में आ जाता है। ड्राइवर रंगनाथ को गियर पकडा देता है तब रंगनाथ उससे कहता है – "ड्रायवर साहब, तुम्हारा यह गियर तो अपने देश की हुकूमत जैसा है।"[3] किसी तरह रंगनाथ शिवपालगंज पहुंच जाता है। वहां उसकी मुलाकात मामा वैद्यजी, वैद्यजी के सुपुत्र रूपन्नाबाबू और बद्री पहलवान, उनके साथी छोटू पहलवान, सनीचर, प्रिंसिपल साहब आदि से होती है। उपन्यास के अंत में रंगनाथ शहर वापस चला जाता है। यों रंगनाथ का आना, कुछ महीनों उसका शिवपालगंज में रहना और शिवपालगंज से वापस शहर लौट जाना, इसके बीच सेंकड़ों घटनाएं घटित होती है जिनसे उपन्यास का कथापट बुना गया है।

उपन्यास की नानाविध घटनाओं का ब्यौरा देते हुए डॉ. पारूकान्त देसाई ने लिखा है : "होटल में बेठकर चाय की चुस्कियों के साथ दुकानदारिन के सारे

इन्स-आउट देखने वाले तथा दुर्घटना की चिन्ता किए बिना नब्बे-सा" की स्पीड में ट्रक चलाने वाले ड्राइवर कहां नहीं है? सड़क को अपनी बपौती समझकर बैलगाड़ी में सो जाने वाले किसानों की भारत में कमी नहीं है। रंगनाथ जैसे एम.ए. पास रिसर्च स्कालर हर जगह मिलेंगे जो पुलिस को कायरतावश दो रूपये (यह 1968 से पहले की बात है, जब दो रूपयों का मूल्य आज के चालीस-पचास से कम नहीं था) रिश्वत में देते हैं, ट्रक का गियर पकड़ते हैं, वीर्य बढ़ाने के लिए भांग पीते हैं (यह वैद्यजी का नूस्खा था), अंधश्रद्धावश कांस में गांठे लगाते हैं ताकि बजरंगबली प्रसन्न हों, हरएक अन्याय को देखते हुए जो केवल सोचते – विचारते रह जाते हैं, जो ऐसी मिट्टी के शेर हैं जो अकेले में गुर्राते तो बहुत हैं पर मौका पड़ने पर दुम दबाकर भाग लेते हैं। वैद्यजी जैसे नेताओंकी कमी नहीं जो अंग्रेजों के जमाने में उनके गुलाम थे और अब स्वतंत्र भारत में मुखौटे बदलकर फिर जनतंत्र-रूपी गाय को दुह रहे हैं। प्रिंसिपल तथा सनीचर जैसे चमचे कहां नहीं? और जहां ये होंगे मास्टर खन्ना और मालवीय अपने आप उग आयेंगे। जोगनाथ, बद्री, छोटू और दूरबीनसिंह जैसे गुण्डे और डकैत भी मिलेंगे क्योंकि इनके सहारे ही तो वैद्यजी जैसे लोग फलते-फूलते हैं। गले में रूमाल बांधकर छैला बनकर घूमने वाले रूप्पन जैसे छात्र भी मिल जायेंगे। एक मास्टर मोतीलाल है जो हमेशा अपनी आटाचक्की की ही रामायण पढते रहते है। क्लास में आपात घनत्व का सिद्धान्त भी वे आटाचक्की के माध्यम से ही समझाते हैं और चालू क्लास में कई बार आटाचक्की की ओर निकल पड़ते हैं। उन्हें प्रिंसिपल भी कुछ नहीं कह सकते क्योंकि वे वैद्यजी के खास आदमी हैं। गयादीन उपाध्यक्ष होते हुए आंखें मूंदे रहते हैं। रामाधीन भीखमखेड़वी युवकों को ताश के नये करिश्मे सिखाते हैं। गयादीन की सुपुत्री बेला ने सिनेमा के सभी गीत याद कर लिए है और अब वह कुंवारी स्थिति को भोगने के लिए तैयार नहीं है।"[4]

यहां पर कुछ पात्र प्रतीक रूप में आये हैं। वैद्यजी आज़ादी के बाद के भ्रष्ट नेता के प्रतीक हैं, रंगनाथ निश्क्रिय निर्वीर्य बुद्धिजीवियों के प्रतीक है, रूपन्नबाबू बिगडैल छात्र-नेता के प्रतीक हैं; प्रिंसिपाल, मास्टर मोतीराम, मास्टर खन्ना और

मास्टर मालवीय हमारी शिक्षा-संस्थाओं को लगी हुई जोंकें है; बद्री पहलवान, छोटू पहलवान, जोगनाथ, दूरबीनसिंह आदि माफिया ताकतों के प्रतीक हैं; रामाधीन भीखमखेड़वी निष्क्रिय विरोधपक्ष के नेता के प्रतीक हैं, बेला उस लड़की का प्रतीक है जो शादी करके बच्चे पैदा करना ही अपना धर्म समझती है। जहां ऐसे पात्र होंगे वहाँ घटनाओं का टुच्चापन, कांइयांपन और हरामीपन के अलावा क्या हो सकता है। आज़ादी के बाद के ये गांव अब "अहा! ग्राम्य जीवन भी क्या है!" वाले नहीं, अपितु हरामी राजनीति के पिल्ले बन गए हैं। यहां भारतमाता 'ग्रामवासिनी' तो है पर उसकी इज्जत के लिरे-लिरे उड़ गए हैं।

डॉ. किशोरसिंह राव ने प्रस्तुत उपन्यास की वस्तु-चेतना पर प्रकाश डालते हुए लिखा है – "स्वातंत्र्योत्तर काल में हमारे देश में एक अनोखा चक्र चला। स्वाधीनता के पहले की सारी बातें उलट गयीं। रेणु के 'मैला आँचल' के उत्तरार्द्ध में बावनदास के द्वारा इस स्थिति का संकेत मिल गया था। शोषक, भ्रष्ट, मूल्यहीन राजनीति ने देशसेवा का मुखौटा धारण कर लिया। वस्तुतः सारे मूल्य आज़ादी के साथ ही धराशायी हो गये। ... शिवपालगंज ही भारत है। भारतीय जीवन की तमाम विदूपताएं, विसंगतियां, विकृतियां उसके 'गंजहेपन' में उतर आयी हैं। 'यन्न भारते तन्न भारते' वाले न्याय से जो शिवपालगज में हो रहा है वह सम्पूर्ण भारतवर्ष मे हो रहा है।"[5]

वैसे तो उपर्युक्त चर्चा मे 'राग दरबारी' की घटनाओं का संकेत मिल रहा है, फिर भी परिगणना करना ही चाहें तो निम्नलिखित घटनाओं का उल्लेख कर सकते हैं – रंगनाथ का शिवपालगंज आना, कोलेज के मेनेज का चुनाव, चुनावी हथकण्डों का प्रयोग, तमंचे के जोर पर चुनावों का जीता जाना, सनीचर का ग्रामसभा के सरपंच के रूप में चुना जाना, धाकधमकी तथा शक्ति-प्रदर्शन द्वारा मास्टर खन्ना और मालवीय का त्यागपत्र धरवा लेना, वैद्यजी द्वारा ईमानदार पुलिस आफिसर का तबादला करवा देना, वैद्यजी के 'मसल-पावर' से जुड़ी घटनाएं, शिक्षा विभाग के अधिकारी द्वारा कालेज का मुआईना करना, कोलेज के पास के उसर का कृषिविभाग के लिए प्रयोग में आया जाना, प्रजातंत्र की

दयनीयता को निरूपित करनेवाली लेखक की फैण्टसी, कौडिल्ला न्याय वाली कहानी, दूरबीनसिंह डकैत की दोनों कहानियां – उनके उत्कर्ष और पतन की --, बद्री पहलवान की गुण्डागर्दी और दादागिरी की कहानियां, बेला को देखने के लिए बिरादरी के रिश्तेदारों का आना, रामाधीन भीखमखेड़वी द्वारा जुआ और गांजा का प्रचार, विद्यजी की भंग-विषयक थ्यौरी, राधेलाल 'काना' से जुड़ी हुई कहानियां, 'सरकारी पैसों के द्वारा, सरकारी पैसों के लिए और सरकारी पैसों से जीनेवाले कालिका प्रसाद के किस्से कि किस प्रकार वह स्वयं तथा उनके गुंगे सरकारी ग्राण्ट, तकावी, कर्ज, सब्सीडी आदि को बड़ी सफाई से चट कर जाते हैं, हमारे देश की कानून व्यवस्था के किस्से, एक आदर्शवादी पात्र के रूप में लंगड़ की प्रस्तुति, शिवपालगंज में 'परंपरा' और 'इंसानियत' जैसे शब्दों का प्रचलन और उनसे जुड़ी हुई कहानियां आदि-आदि।

प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में हिन्दी के जाने-माने आलोचक डॉ. रामदरश मिश्र ने लिखा है – "इतनी सारी जानी-पहचानी गतिविधियां, प्रसंग, घटनाएं, रोजमर्रा की जिन्दगी के इतने व्यापार बिखरकर एक नीरसता, ऊब और वितृष्णा की ही सृष्टि करते। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। लेखक की कुशल कथा-विन्यास शक्ति ने सारी बातों को केन्द्रवर्ती स्थिति के चारों और इस तरह बुन दिया है कि मामूली लगनेवाली बात भी उबाने की जगह रमाने लगती है। यह लेखक की एक बहुत बड़ी सफलता है कि उसने मामूलियत को, सपाटता को मामूली या सपाट-सी लगनेवाली शैली में कहकर उसमें एक नया रस भर दिया है। लेखक चाहे मेले का चित्र खींच रहा हो, चाहे किसी यात्रा का, चाहे चुनाव का, चाहे प्रेम का, चाहे चौपाल का, चाहे लोगों के निबटने का बहुत-ही यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाता है।"[6]

'राग दरबारी' के फ्लेप पर दिए गए प्रकाशकीय वक्तव्य में उसे एक 'अनांचलिक' उपन्यास कहा गया है, परंतु उपन्यास को आद्यन्त पढ़ जाने पर लगता है कि उपन्यास के केन्द्र में शिवपालगंज है, वहां के लोग हैं और है उनका गंजहापन और हरामीपन। अतः जिस तरह 'मैला आँचल' में मेरीगंज गांव उभरकर

आया है, ठीक उसी तरह यहां शिवपालगंज उभरकर आया है, जिसे आंचलिक उपन्यास का एक मुख्य अभिलक्षण माना जाता है। यह शायद इसलिए हुआ है कि 'मैला आँचल' के प्रकाशन के बाद रातोंरात आंचलिक उपन्यासों का तांता लग जाता है और आलोचक प्रत्येक 'ग्रामभित्तीय उपन्यास' को आंचलिकता के खाते में खतियाने लगता है। यहां तक कि किसी लेखक के एक दो उपन्यासों के आंचलिक होने पर उनके तमाम-उपन्यासों पर यह 'लेबल' लगा दिया जाता है। ऐसा शैलेश मटियानी के साथ हुआ है। एक-दो उपन्यासों के कारण उनके तमाम उपन्यासों को एक शोधकर्ता ने 'आंचलिक' उपन्यास के रूप में घोषित किया है।[7]

खैर जो भी हो किसी उपन्यास के 'आँचलिक' या 'अनांचलिक' होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। उपन्यास की आलोचना का निकष उसकी कलात्मक उत्कृष्टता होना चाहिए। उसका नयापन होना चाहिए। वास्तव में वह 'नोवेल' हो।

(2) 'राग दरबारी' उपन्यास की पात्र-सृष्टि या चरित्र-सृष्टि:

'राग दरबारी' उपन्यास में शिवपालगंज की कथा है। शिवपालगंज एक गांव है। अतः जाहिर है कि उसके अधिकांश पात्र भी ग्रामीण ही होंगे। रंगनाथ शहर से आया हुआ है। कुछ सरकारी हाकिम, पुलिस के अधिकारी, जज-वकील आदि हैं जिनको हम शहराती कह सकते हैं।

'राग दरबारी' उपन्यास का 'टोन' व्यंग्यात्मक है। अतः उनके सभी चरित्रों से व्यंग्य-विदग्धता टपकती है। उपन्यास के प्रमुख केन्द्रवर्ती चरित्र के रूप में वैद्यजी हमारे सामने आते है। इनका व्यंग्यात्मक ढंग से कैरिकेचर खीचते हुए लेखक टिप्पणी करते हैं – "विद्यजी थे, हैं और रहेंगे। अंग्रेजों के जमाने में अंग्रेजों के लिए श्रद्धा दिखाते थे। देसी हुकूमत के दिनो में देसी हाकिमों के लिए श्रद्धा दिखाने लगे। वे देश के पुराने सेवक थे। पिछले महायुद्ध के दिनों में जब देश को जापान से खतरा पैदा हो गया था, उन्होंने सुदूर पूर्व में लड़ने के लिए बहुत-से सिपाही भरती कराए। अब जरूरत पड़ने पर रातोंरात अपने राजनीतिक गुटों में सैकड़ों सदस्य भर्ती करा देते हैं। पहले भी वे जनता की सेवा जज की इजलास में जूरी और असेसर बनकर, दीवानी के मुकदमों में जायदादों के सिपुर्दकार होकर

और गांव के जमींदारों में लम्बरदार के रूप में करते थे। अब वे को-ओपरेटिव यूनियन के मैंनेजिंग डायरेक्टर और कालेज के मैनेजर थे। वास्तव में वे इन पदों पर काम करना नहीं चाहते थे, क्योंकि उन्हें पदों का लालच न था। पर उस क्षेत्र में जिम्मेदारी के इन कामों को निभाने वाला कोई आदमी ही न था और वहां जितने नवयुवक थे, वे पूरे देश के नवयुवकों की तरह निकम्मे थे, इसलिए उन्हें बुढ़ापे में इन पदों को संभालना पड़ा था।"[8]

आज़ादी के बाद हमारे यहां **"Shrewd"** भ्रष्ट, राजनीतिक नेताओं का एक तांता-सा लग गया है। 'गोदान' क प्रोफेसर मेहता कहते हैं भेड़िये अब मेमेमने बनकर आये हैं। पर आज़ादी के बाद के ये नेता तो भेड़िये भी है और मेंमने भी है। कमी तो भेड़िये बन जाते है और कमी मेंमने । सांप का काटा बच सकता है पर इनका काटा नहीं बच सकता। 'महाभोज' के दासाहब की भांति 'राग दरबारी' के वैद्यजी भी एक ऐसे ही नेता हैं। जैसे भगवान के लिए कहा जाता है कि **"Present everywhere but visible nowhere"** उसी तरह ये सभी जगह हैं, पर दिखाई नहीं पड़ते। शिवपालगंज में जो कुछ भी गलत-सलत हो रहा है, और गलत-सलत ही हो रहा है, उसमें उनका ही हाथ होता है। पर वे कभी भी पकड़े नहीं जाते। आर्थर पोलार्ड महोदय ने व्यंग्य कार के संदर्भ में कहा है – "He is then able to exploit more fully the difference between appearance and reality and especially to expose hypocrisy, his whole reputation is at stake openly he subscribes to the ideals that secretly he ignores of defies."[9] वैद्यजी भी ऐसे ही नंबरी हिप्रोक्रेट हैं। उनकी वाणी और व्यावहार में, आचार और विचार में जमीन-आसमान का अंतर है। हर काम वे अपने 'मनी पावर' और मसलपावर' से करा लेते है। भीतर से इतने गंदे है पर ऊपर से साफ-सर्राफ। बाहरी तौर पर अर्थोपार्जन के लिए उन्होंने वैद्य का पेशा अपना लिया है जिसका मुद्रालेख है गरीबों का मुफ्त इलाज और फायदा न हो दाम वापिस। पहले के अनुसार उन्होंने किसी गरीब का इलाज नहीं किया और दूसरे के लिए कभी मौका नहीं आया। वस्तुतः वे गुप्त रोगों का इलाज करते हैं। इस

क्षेत्र में उनकी एक मूल स्थापना यह है कि सारे रोग वीर्य की न्यूनता के कारण ही होते हैं। इस विषय में वे प्रायः सुकरात का उल्लेख करते हैं जिन्होंने शायद बताया है कि जिन्दगी में तीसरी से चौथी बार ब्रह्मचर्य का नाश करना हो तो पहले अपनी कब्र खोद लेनी चाहिए। उनकी राय में ब्रह्मचर्य न रखने से सबसे बड़ा हर्ज यह होता था कि आदमी बाद में चाहने पर भी ब्रह्मचर्य का नाश करने लायक नहीं रह जाता था। अस्तु, उसकी रक्षा के लिए उन्होंने भंग नामक एक पत्ती का अनुसंधान कर लिय था, उसमें मेवा-मिष्टान्न मिलाकर खाने से स्वास्थ्य चंगा रहता है, क्योंकि उससे वीर्य की पुष्टि होती है। रंगनाथ के 'केस' को भी वे इसी नजरिये से लेते हैं।[10]

वैद्यजी के उपरान्त दूसरा महत्वपूर्ण पात्र है रंगनाथ का। समूची उपन्यास-कथा रंगनाथ के आने और जाने के बीच की वस्तु है। अतः रंगनाथ भी उपन्यास के चरित्रों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। 'रंगनाथ' नाम ही बहुत-कुछ सूचित कर जाता हैं। वह किसी भी रंग में रंग सकता है। शिक्षित होते हुए मामाजी (वैद्यजी) की हर बार को वह मान लेता है। उसे सनीचर भी उल्लू बना जाता है और रूप्पन भी अपने ढंग से हांकता है। रंगनाथ हमारे देश के निष्क्रिय निर्वीर्य बुद्धिजीवियों का प्रतीक हैं जो गुर्राते तो बहुत है, पर वक्त आने पर सबसे पहले भाग खड़े होते हैं। एक नोबेल-विजेता का कथन है – "There may be times when we are powerless to prevent injustice but there must be never a time when we fail to protect."[11] अर्थात् ऐसा समय आ सकता है कि अन्याय को रोकने के लिए हमारे पास कोई सत्ता न हो, पर ऐसा समय कभी नहीं आ सकता कि हम विरोध-प्रदर्शित करने में भी अक्षम हो जाएं। पर हमारे देश के बुद्धिजीवी विरोध करने का माद्दा ही खो चुके हैं। बकौल श्रीलाल शुक्ल के हमारे यहां के बुद्धिजीवी वह प्राणी हैं कि यदि उनको विदेश का एक दौरा करवाया जाए तो वे साबित कर सकते है कि वे अपने बाप की औलाद नहीं है।[12] उपन्यास के प्रारंभ में ही लेखक ने रंगनाथ का जो शब्द-चित्र अंकित किया है वह उसके व्यक्तित्व को समझने में सहायक हो सकता है – "अहा! क्या हुलिया था! नवकंजलोचन

कंजमुख कर कंज पद कंजारुण्म्। पैर खद्दर के पैजामे में, सर खद्दर की टोपी में, बदन खद्दर के कुर्ते में। कन्धे से लटकता हुआ भूदानी झोला। हाथ में चमड़े की अटैची। ड्राइवर ने उसे देखा और देखता ही रह गया।"[13] छठे-सातवें दशक में हमारे देश के तथाकथित बुद्धिजीवियों का यह राष्ट्रीय पोशाक (ड्रेस-कोड) था। अर्थात् कि लोग। (पढ़े-लिखे) बुद्धिजीवी दिखना चाहते थे, असल में होते नहीं थे। भला क्या कोई बुद्धिजीवी किसी अनपढ़ अंगूछा-छाप के कहने पर कांस मे गांठें लगा सकता है बजरंबली को प्रसन्न करने के लिए। पर रंगनाथ सनीचर के कहने पर गांठें लगाता है। वैद्यजी के दरबार में वह देखता है कि कई लोगों के साथ अन्याय हो रहा है पर वह भुनभुनाकर रह जाता है। रंगनाथ जैसे बुद्धिजीवियों को देखकर सर्वेश्वर की काव्य-पंक्तियां स्मृति-पटल पर मंडराने लगती है –

"एक थे हां-हां, एक थे नहीं नहीं,
हां-हां की गरदन हिली ऊपर-नीचे,
नहीं-नहीं की दाएं-बाएं,
एक थे हां, हां, एक थे नहीं-नहीं !!" [14]

रूप्पनबाबू वैधजी के सुपुत्र और छात्र-नेता हैं। हिन्दी में एक कहावत है – "हौनहार बिरवान के होत चिकने पात" – रूप्पनबाबू इस कहावत को चरितार्थ करते हैं। अभी से वे अपने पिताजी के नक्शे-कदम पर चल रहे हैं। उन पर लेखक की टिप्पणी है – "रूप्पनबाबू स्थानीय नेता थे। उनका व्यक्तित्व इस आरोप को काट देता था कि इण्डिया में नेता होने के लिए पहले धूप में बाल सफेद करने पड़ते हैं। उनके नेता होने का सबसे बड़ा आधार यह था कि वे सबको एक निगाह से देखते थे। थाने में दारोगा और हवालात में बैठा हुआ चोर – दोनों उनकी निगाह में एक थे। उसी तरह इम्तहान में नकल करने वाला विद्यार्थी और कालेज के प्रिंसिपल उनकी निगाह में एक थे। ये सबको दयनीय समझते थे, सबका काम करते थे, सबसे काम लेते थे। उनकी इतनी इज्जत थी कि पूंजीवाद के प्रतीक दुकानदार उनके हाथ सामान बेचते नहीं, अर्पित करते थे और शोषण के प्रतीक इक्केवाले उनको शहर तक पहुंचाकर, किराया नहीं, आशीर्वाद मांगते थे। उनकी

नेतागिरी का प्रारंभिक और अंतिम क्षेत्र वहां का कालिज था, जहां उनका इशारा पाकर सैंकड़ों विद्यार्थी तिल का ताड़ बना सकते थे और जरूरत पड़े तो उस पर चढ़ भी सकते थे।"[15]

गंजहों की यशगाथा में चार चाँद लगाने वाले एक पं. राधेलाल 'काना' भी है। शिवपालगंज में दो बातों के लिए उनका नाम मशहूर है – "न उखड़ने वाला गवाह और कभी न चुकने वाला मर्द। झूठी गवाही देना ही उनका पेशा है। ईश्वर की भांति वे हर 'मौका-ए-वारदात' पर उपस्थित होते थे। जरूरत पड़ने पर दस्तखत कर लेता हूं से लेकर मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूं।" ऐसा कोई भी बयान वे बड़ी आसानी से दे सकते है। देखिए उनका शब्द चित्र लेखक ने किस प्रकार खींचा है – "दीवानी और फोजदारी कानूनों का उन्हें इतना ज्ञान सहज रूप में मिल गया था कि वे किसी भी मुकदमे में गवाह की हैसियत से बयान दे सकते थे और जिरह में उन्हें अब तक कोई भी वकील उखाड़ नहीं पाया था। जिस तरह कोई भी जज अपने सामने के किसी भी मुकदमे में फैसला दे सकता है, वैसे ही राधेलाल किसी भी मामले के चश्मदीद गवाह बन सकते थे। संक्षेप में, मुकदमेबाजी की जंजीर में वे भी जज, वकील, पेशकार आदि की तरह एक अनिवार्य कड़ी थे और जिस अंग्रेजी कानून की मोटर पर चढ़कर हम बड़े गौरव के साथ 'रुल आफ लो' की घोषणा करते हुए निकलते हैं, उसके पहियों में वे टाईराड की तरह बंधे हुए उसे मनमाने ढंग से मोड़ते चलते थे। एक बार इजलास मे खड़े होकर जैसे ही वे शपथ लेते 'गगा कसम, भगवान कसम; सच-सच कहेगे' वैसे ही विरोध पक्ष से लेकर मजिस्ट्रेट तक समझ जाते थे कि अब यह सच नहीं बोल सकता। पर ऐसा समझना बिल्कुल बेकार था, क्योंकि फैसला समझ से नहीं, कानून से होता है, और पं. राधेलाल की बात समझने में चाहे जैसी लगे, कानून पर खरी उतरती थी।"[16]

'न चुकने वाला मर्द' की बात यह है की पं. राधेलाल यदि किसी औरत के पीछे पड़ जाए तो उसकी मजाल नहीं है कि वह उसके चक्कर में न आ जाए।

ऐसे ही शिवपालगंज के नवरत्नों में एक हैं कालिकाप्रसाद। आज़ादी के बाद हमारे देश में एक नयी प्रजाति ने जन्म लिया है। इस प्रजाति के लोगों का काम सरकारी ग्राण्ट, तकावी, कर्जे आदि को खाने का है। कालिकाप्रसाद उनमें से एक हैं। ग्राण्ट या कर्ज देनेवाली किसी स्कीम के बारे में योजना-आयोग के सोचने – भर की देर होत्ती थी कि उसके बारे में कालिकाप्रसादजी सबकुछ जान लेते थे। चमड़ा कमाने की ग्राण्ट मिलने वाली थी, तभी उन्होंने ऐलान किया जाति-पांति बिलकुल बेकार की चीज है और हम बांमन और चमार एक हैं। चमार देखते रह गए और और चमारों को मिलने वाली ग्राण्ट वे पा लेने में कामयाब हो गये। इन्हीं महोदय के बारे में शिवपालगंज के एक दूसरे नवरत्न सनीचर वैद्यजी के दरबार में बताते है –

"गुरु महाराज, ये जिसका नाम कालिकाप्रसाद है, यह भी एक ही हरामी है।... हाकिमों से काम निकालने के लिए आदमी की शकल बिल्कुल इसीकी जैसी होनी चाहिए। जब जरूरत होती है तो यह बड़े-बड़े लच्छन झाड़ता है, कान-पूंछ फटकार कर मुंह से बारूद-जैसी निकालने लगता है। एक-एक सांस में पाँच-पाँच, सात-सात एमेले लोगों के नाम बोल जाता है और हाकिम बेचारे का मुंह खुला का खुला रह जाता है। उस वक्त कोई कालिकाप्रसाद की लगाम पर हाथ लगा दे तो जानूं। और महाराज वही कालिकाप्रसाद अगर किसी अकडू हाकिम के सामने पड़ जाय, तो पहले से ही केंचुए की तरह टेढ़ा-मेंढ़ा होने लगता है। क्या बतावें महराज, आँख नीची करके ऐसा भूदानी नमस्कार करता है कि हाकिम सोचना ही रह अजाय कि यह कौन है – विकासभाई कि प्रकाशभाई! अकिल से इतना हुशियार है, पर भुग्गा जैसा बनकर खड़ा हो जाता है और तब क्या मजाल कि कोई इसे ताड़ ले। बड़ा से बड़ा काबिलाअदिम इसको बेवकूफ मानकर आगे निकल जाता है और तब यह पीछे से झपटकर हमला करता है। और गुरु महाराज, इसके तिकड़म का तो कहना ही क्या? एह हेह्। सरकारी दफ्तर में चपरासी से लेकर बाबू तक और बाबू से लेकर हाकिम तक – सभी जगह यह घुसा हुआ है। घुन है, पूरा घुन।

जिस मिसिल में फ़ट्टो, उसीकी बीच से घुसकर बाहर निकल आवेगा। शिवपालगंज का नाम उजागर किये हैं।"[17]

सनीचर जब कहता है कि यह 'एक ही हरामी है', तो ऐसे कहता है जैसे 'हरामी' होना कोई तमगा या बिरूद हो। ऐसे' – धूर्त, हरामी और कांइयों से भरा है शिवपालगंज। पेट का पानी हिलाये बिना जब वैद्यजी कोई बात निहायत संयत ढ़ंग से करते है तो उससे उनका कांइयापन और धूर्तता ही टपकती है। को-ऑपरेटिव यूनियन में ग़बन होता है, तब निहायत शाति से वैद्यजी कहते है – "हमारी युनियन में ग़बन नहीं हुआ था। इस कारण लोग हमें संदेह की दृष्टि से देखते थे। अब तो हम कह सकते हैं कि हम सच्चे आदमी है। ग़बन हुआ है और हमने छिपाया नहीं है। जैसा है, वैसा हमने बता दिया है।"[18]

जब प्रतिभूति-घोटाला (हर्षद मेहता वाला) हुआ था, तब तत्कालीन वित्तमंत्री ने बयान दिया था – "3780 करोड़ का घोटाला हुआ है और यह हमारी प्रामाणिकता है कि हमने इसे छिपाया नहीं है।" लेखक का लिखा हुआ 25 साल बाद भी किसी-न-किसी तरह सामने आया है और इधर तो एक के बाद एक भयंकर घोटाले सामने आ रहे हैं और अब घोटाले की रकम का आंकड़ा लाखों करोड़ो को पार कर रहा है।

ये तो कुछ प्रमुख पात्र है। 'राग दरबारी' ऐसे पात्रों से अटा पड़ा है। यहां प्रिंसिपल है, मास्टर खन्ना और मालवीय है, आटा चक्की की रामायण पढ़ने वाले मास्टर मोतीराम है; बद्री पहलवान, छोटू पहलवान, जोगनाथ, दूरबीनसिंह आदि गुण्डा और डकैत हैं; लोग है जो कांइयापन और हरामीपन में ही गौरव का अनुभव करते हैं। एक लंगड़ का चरित्र है जो किन्हीं नीति-नियमों और आदर्शों की बात करता है, उसका लंगड़ापन अपने आप में काफी कुछ कह जाता है। बद्री पहलवान और सनीचर जैसे लोग उसे 'बांगडू' कहते हैं। यहां जो जितना ज्यादा हरामी वह उतना ही श्रेष्ठ माना जाता है। शिवपालगंज की यशोगाथा बढ़ाने वाले ये ही हरामी लोग हैं।

उपन्यास में नारी-चरित्रों का अभाव भी काफी सूचक हैं। औरतें या तो समूह में हैं या झुण्ड में। स्वतंत्र पात्रों में और वह भी उल्लेख और अलप-झलप में, केवल दो-तीन पात्र हैं – 'गयादीन बनिये की लड़की बेला', 'राधेलाल काना की कुतिया', पूरे गांव में कुतिया नाम से ही वह जानी जाती है और बद्री पहलवान की रखैल एक लाचार और दयनीय स्त्री। नारी-पात्रों का यह अभाव इस बात का सूचक है कि आज़ादी के पहले ग्रामीण क्षेत्रों में नारी-शिक्षा की बातें चलती थीं, पढ़-लिखकर नारी आत्मनिर्भर हो, यही कहा जाता था। परंतु आज़ादी के बाद पुनः पीछे लौटना हो रहा है। 'कस्तूरी कुण्डल बसे' (मैत्रेयी पुष्पा) की कस्तूरी का महिला-मंगल विभाग उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री जबरन बन्द करवा रहा है क्योंकि उनके अनुसार महिलाओं का स्थान घर की चहारदीवारी है और महिलाओं को नौकरियां देने से देश के नवजवान नौकरियों से वंचित रह जाते हैं।[19] उपन्यास में जिन दो-तीन नारी-पात्रों का जिक्र है उनका भी वर्णन अच्छे संदर्भों में नहीं है। बेला की तुलना गरमायी भैंस से की गई है। दूसरी दो स्त्रियों के उल्लेख भी कुछ गौरवपूर्ण तरीकों से नहीं हुआ है। इस प्रकार उपन्यास में जो पात्र है, वे तो काफी कुछ कह ही जाते हैं, पर जो नहीं हैं उसके द्वारा भी काफी कुछ संकेतित हुआ है।

निष्कर्षतया कहा जा सकता है कि 'राग दरबारी' की चरित्र-सृष्टि लेखक की व्यंग्यात्मक दृष्टि की निपज है। उसका प्रत्येक पात्र एक व्यंग्य-वक्रता को लिए हुए है। 'राग दरबारी' अभिधा का उपन्यास ही है। छंगामल कालेज के कृषि विभाग हेतु जूता हुआ उसर देखकर ही कोई कह सकता है कि यह जमीन विनोबाजी को भूदान में देने योग्य है। इस तरह हर जगह व्यंग्य-वक्रता और व्यंग्य-विदग्धता है। उपन्यास की चरित्र-सृष्टि में भी उसे लक्षित किया जा सकता है।

(3) 'राग दरबारी' उपन्यास की कथ्य-चेतना :

'कथ्य-चेतना' से हमारा क्या तात्पर्य है यह तो पूर्ववर्ती पृष्ठों में स्पष्ट हो ही गया है। यहां हमारा उपक्रम आलोच्य उपन्यास की उस कथ्य-चेतना को स्पष्ट करने का है। उपन्यास की घटनाएं, उपन्यास के पात्र, उपन्यास के कथोपकथन, उपन्यास का वाक्य-विन्यास ये सब व्यंग्य-विधानों से सारोबार है। 424 पृष्ठों का

यह बृहत्काय उपन्यास साद्यंत व्यंग्य-वक्रता, व्यंग्योक्तियां आदि से परिपूर्ण है। आंग्ल विवेचक स्टीवेनसंस महोदय ने एक स्थान पर उपन्यास की उत्कृष्टता के संदर्भ में लिखा है – "From all its chapters, from all its pages, from all its sentences the well-written novel echoes and re-echoes its one creative controlling thought."[20] अर्थात एक अच्छे स्तरीय उपन्यास में उसके प्रत्येक प्रकरण, उसके प्रत्येक पृष्ठ और प्रत्येक वाक्य से उसके लेखक की विचारधारा – Controlling thought-- गूंजित और अनुगूंजित होती है।

'राग दरबारी' उपन्यास के लेखक का यह 'Controlling thought'यह है कि वह जहां भी देखता है, उसे विद्रूपता, विसंगतता, विषमता, विकृतता ही दृष्टिगोचर होते हैं और उसका दृष्टि-कैमेरा तदनुरूप छबियों को खींचता है। 'जल टूटता हुआ', 'अलग अलग वैतरणी', 'आधा गांव' आदि उपन्यासों में भी इन विकृतियों का, विद्रूपताओं का, गंदगी का चित्रण हुआ है; परन्तु वहां कुछ ऐसे पात्र भी हैं जो अभी भी जीवन-मूल्यों के लिए संघर्ष कर रहे हैं। यहां जीवन-मूल्यों के लिए लड़ने वाला पात्र है तो भी कौन" लंगड़, जिस पर सब हंसते हैं, जिसे लिग 'बांगड़ू' कहते हैं, उसका मखौल उड़ाते हैं। तो आखिर क्यों? आंग्ल-विवेचक मेरीडिय महोदय ने "The idea of comedy" में व्यग्य के संदर्भ में कहा है – "If you detect the ridicule and your kindliness is chilled by it, you are slipping in to the grasp of satire."[21] मेरीडिय का यह कथन हास्य और व्यंग्य के अंतर को स्पष्ट करने वाला है। यदि हम किसी हास्य के आलबन का इतना मज़ाक उड़ाते हैं कि उसके प्रति हमारी दयालुता समाप्त हो जाय तो हास्य व्यंग्य की गिरफ्त में आ जाता है। और 'राग दरबारी' में ठीक यही हुआ है। हर स्थिति, हर पात्र, हर वाक्य में लेखक का दृष्टिकोण मखोल उड़ाने का रहा है। देश और समाज की स्थिति से लेखक निराश हो चुका है। चारों तरफ लूट ही लूट मची है। लूट तो पहले भी होती थी। पर तब लोग उसकी निंदा करते थे, मंर्त्सना करते थे। पर अब तो लुटना ही आदर्श हो गया है। लुटेरे श्रद्धाभाजन हो रहे हैं। किसी देश या समाज की जागरूकता का मापदण्ड यह होता है कि समाज में कितने लोग

हैं जो जीवन-मूल्यों की परवाह करते हैं, आदर्शों और सिद्धान्तों को पसंद करते हैं। अब तो उल्टा हो गया है। एक छोटे-से स्तर पर जीवन-मूल्यों में जीने वाले व्यक्ति को लोग 'बांगडू' कहते हैं, उसका मखौल उड़ाते हैं, उसका मजाक उड़ाते हैं।

उपन्यास की 'कथ्य-चेतना' पर विचार करते हुए डॉ. रामदरश मिश्र लिखते हैं – 'निश्चय ही यह उपन्यास अपने यथार्थवादी स्वभाव के कारण एक विशिष्ट कृत है जिसमें आज के गांव के सारे मल्यहीन व्यवहारवाद को (जिसमें छोटे-से लेकर बड़े तक सभी कहीं-न-कहीं मुबतला है) बहुत निर्ममता या कलागत निस्संगता के साथ साकार किया गया है। परंतु प्रश्न उठता है कि क्या सचमुच गांव में मानवीय संवेदना शेष नहीं। यह सच है कि गांव का हर आदमी चालाक है, काइयां हैं, धूर्त है, स्वार्थी है और मूल्यों में अभी भी जीवित शहरी रंगनाथ को हर आदमी मूर्ख समझकर झिड़क देता है। किन्तु क्या देहात के किसी भी व्यक्ति में सारे मूल्यों के टूटने, स्वार्थ में मानवीय संवेदना के घिसने, मानवीय रिश्तों के चुकने का अहसास और तज्जन्य अंतर्द्वन्द्व नहीं रहा? क्या लेखक इन सारी भयावह स्थितियों और विसंगतियों का द्रष्टा मात्र है? क्या वह कुछ शेष या कहीं-कहीं निहित प्रकाश-किरणों का संयोजन कर सारी जड़ता, विसंगति, कुरूपता, विकृतियों के भयानक टकराव के बीच एक रास्ता नहीं बना सकता? ऐसा करके ही वह समस्त सामयिक और ऊपरी दुनिया के तथ्यों को लेकर एक अन्तः सृष्टि कर सकता है वरना कृति यथार्थ का प्रस्तुतिकरण-भर रहकर शेष रह जाएगी। 'राग दरबारी' सामयिक यथार्थ तक अपने को प्रतिबद्ध रखने के कारण तथा इस यथार्थ के नीचे तड़पती अन्तर्निहित मानवीय व्यथा, मूल्य-चेतना और टूटने और न बनने के तीखे द्वन्द्व से असमद्व होने के कारण आने वाले कल के लिए हमें आश्वस्त नहीं करता और आज भी हमारी मानवीय चेतना को बहुत गहराई तक नहीं छूता।"[22] इसी क्रम में 'राग दरबारी' की आलोचना करते हुए वे लिखते हैं – "जैसे देहात में कुछ चिबिल्ले-चिबिल्लेपन से बात करने की अपनी शैली विकसित कर लेते हैं, उसी प्रकार लेखक को हर बात व्यंग्य में कहनी हैं। नहीं तो मैं नहीं

समझता कि मरदों और औरतों (खास तौर पर औरतों) के पाखाना होने का इतना व्यंग्यात्मक चित्र क्यों प्रस्तुत किया जाता?"[23]

परंतु इसके पूर्व (देखिए संदर्भ – 6 का उद्धरण) इन्हीं सब बातों की भूरि-भूरि प्रशंता स्वयं मिश्रजी कर चुके हैं। अतः 'राग दरबारी' को लेकर मिश्रजी के दोनों कथन अंतर्विरोधों से ग्रस्त है। वस्तुतः 'राग दरबारी' के संदर्भ में उपर्युक्त प्रश्नों के उठने का कारण यह है कि आलोचक उसके 'व्यंग्य-रूपबंध' को नज़रअन्दाज़ कर गए है। यदि हम समझ लें कि 'राग दरबारी' एक व्यंग्य उपन्यास है, तो फिर इस प्रकार के प्रश्नों से जूझना नहीं पड़ेगा। इस संदर्भ में डॉ. पारूकान्त देसाई का निम्नलिखित नजरिया विचारणीय है –

"यह स्वतः सिद्ध है कि 'अलग अलग वैतरणी', 'जल टूटता हुआ', 'मुरदाघर' प्रभृति उपन्यासों के रूपबंध से 'राग दरबारी' का रूपबंध भिन्न है। उसके पोर-पोर में व्यंग्य है और यह व्यंग्य ही लेखक की समाजोन्मुखिता, लोकधर्मिता, जीवन-मूल्यों के प्रति उसके गहरे सरोकारों को अभिव्यंजिक करता है। वस्तुतः व्यंग्य में लेखक का उद्देश्य व्यंजित रुप में ही रहेगा। यदि वह ज्योतिर्बिन्दुओं की तलाश-तराश में निकल पड़ेगा, तो फिर व्यंग्य कहां रहेगा? लंगड़ के पात्र द्वारा लेखक यही तो व्यंजित करना चाहता है कि आज के इस मूल्यहीन युग में मूल्यों को लेकर चलने वाला व्यक्ति पागल या मूर्ख है करार दिया जाता है। रंगनाथ की उपेक्षा से भी यही द्योतित होता है और 'राग दरबारी' का लेखक भी 'इन सारी भयावह स्थितियों और विसंगतियों का दृष्टा-मात्र कहां है? यदि दृष्टा-मात्र होता तो 'राग दरबारी' की सर्जना ही क्यों होती? वस्तुतः 'राग दरबारी' एक व्यंग्य उपन्यास है और उसका मूल्यांकन भी उसी दृष्टि को मद्देनज़र रखकर होना चाहिए; जैसे 'मैला आँचल' का मूल्यांकन या 'अलग अलग वैतरणी' का मूल्यांकन उन-उन लेखकों के लेखकीय प्रयोजनों के तहत होता रहा है।"[24]

आगे इसी संदर्भ में वह कहते हैं – 'राग दरबारी' की सफलता एवं उसके लेखक की कुशल व्यंग्य-नियोजना तो इसीसे प्रमाणित होती है कि इस बृहदकाय उपन्यास का पोर-पोर व्यंग्य की मिट्टी से रचा गया है। समूचा उपन्यास – पहले

वाक्य से लेकर अंतिम वाक्य तक – व्यंग्य-विधा के अनुकूल एक ही प्रकार की व्यंग्य-शैली का निर्वाह करता है। उसका वस्तु, चरित्र, प्रसंग, कथाएं, अवांतर कथाएं, कथोपकथन, परिवेश, भाषिक-संरचना आदि सभी में एक प्रकार की व्यंग्यलता (यह शब्द अब आलोचना मेम स्थापित हो गया है) अन्तर्निहित है।"[25]

'राग दरबारी' सफलता का एक कारण मुझे यह भी लगता है कि उसमें लेखक ने 'फोर्म' को लेकर एक नयी परिपाटी का निर्माण किया है। इयान वाट महोदय का इस संदर्भ में कहना है : "Since the novelist's primary task is to convey the impression of fidelity of human experience, attention to any pre-established formal convention can only."[26] अर्थात पूर्व-स्थापित कोई भी रूढ़ि या तरीका उपन्यास की सफलता के लिए खतरा है। 'मैला आँचल' की भांति यहां भी लेखक की एक नयी कथानक-रूढ़ि पाठकों, भावकों और आलोचकों को आकर्षित करती है।

अतः 'राग दरबारी' की कथ्य-चेंतना का विश्लेषण करते समय निम्नलिखित मुद्दे सामने आते हैं –

(1) व्यंग्य क्यों आवश्यक हो गया?

हमारी काव्य-मीमांसा में हास्य' की गणना रसों में होती है। 'व्यंग्य' रस नहीं है। फिर आज के साहित्य में, लगभग सभी रूपों में व्यंग्य क्यों उभरकर आ रहा है – व्यंग्य-कविता, व्यंग्य-निबंध, व्यग्य-कहानी, व्यंग्य-नाटक, व्यंग्य-रेखाचित्र, सब जगह व्यंग्य क्यों? आखिर क्यों? क्योंकि पहले के किसी भी युग की तुलना में इधर 'हिपोक्रसी' बहुत बढ़ गयी है। आचार-विचार, कथनी-करनी, सब में आसमान और जमीन का अंतर आ गया है। फलतः चारों तरफ विषमता, विरुपता, विदूपता, विकलांगता, विकृतता आदि 'वि' छा गये हैं। और जब-जब ऐसी स्थिति का निर्माण होता है; तब-तब चिंतकों, लेखकों और कवियों ने व्यंग्य का एक औजार के रूप में इस्तेमाल किया है, यही कबीर ने किया था, यही भारतेन्दु तथा उनके मंडल के कवियों-लेखकों ने किया था, यही पारसाई ने किया था और यही श्रीलाल शुक्ल जैसे व्यंग्यकार कर रहे हैं। आज चारों तरफ के

परिवेश में भ्रष्टाचार, कदाचार, अन्याय और अत्याचार इतने बढ़ गए हैं कि 'कलम के सिपाही' अब चूप नहीं रह सकते। एक उर्दू शायर की पंक्तियां कानों पर नगाड़े बजा रही हैं –

"ये जमीं बेच देंगे, जहां बेच देंगे, ये मुर्दों के तनका
कफ़न बेच देंगे;
कलम के सिपाही अगर चूप रहे तो,
वतन के ये नेता वतन बेच देंगे।"

'व्यंग्य' की ताती जरूरत के संदर्भ में डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी के निम्नलिखित विचार ध्यानार्ह रहेंगे – "निश्चय ही समसामयिक वातावरण राधा और मीरा के अनुकूल नहीं है। इस परिवेश में 'राग दरबारी की ही तर्जना हो सकती है। व्यंग्य ही जीवन को दिशा दे सकते हैं। आधुनिक जीवन की कटुता ने तमाम कोमल भावनाओं और संवेदनाओं पर प्रश्न-चिह्न लगा दिया है।"[27]

'राग दरबारी' के प्रकाशन को भी लगभग चालीस साल हो चुके हैं, इस बीच, स्थिति बद से बदतर होती गई है। पहले घपले हजारों-लाखों में होते थे, अब करोड़ों में, और लाखों-हजारों-करोड़ों में होते हैं। एशियाड़ गेइम्स का घपला लगभग एक लाख करोड़ का है।[28] अभी कर्नाटक के भाजपा चीफ़-मिनिस्टर पर लोकायुक्त ने 60,000 करोड़ के घपले क़ा आरोप लगाया, और क्या कर लिया लोगों ने या क्या कर लिया बीजेपी वालो ने जो 'Party with difference' का दावा करते हैं? चीफ़ मिनिस्टर का त्यागपत्र ले लिया और उसके स्थान पर चीफ मिनिस्टर येदुरप्पा के खास आदमी की नियुक्ति हो गयी।[29] 'राग दरबारी' के वैद्यजी कहते हैं – "हमारी यूनियन में ग़बन नहीं हुआ था। इस कारण लोग हमें संदेह की दृष्टि से देखते थे। अब तो हम कह सकते हैं कि हम सच्चे आदमी हैं। ग़बन हुआ है और हमने छिपाया नहीं है। जैसा है, वैसा बता दिया है।"30 हमारे भाजपा प्रमुख भी कह रहे है – "देखिए हमने कर्णाटका में लोकायुक्त की नियुक्ति कर दी है। लोकायुक्त ने कहा 60,000 करोड़ का धपला हुआ है और देखो हमने इसे मान लिया। हाथ जोड़कर येदुरप्पा को हमने मना लिया कि वे सी. एम. की कुर्सी छोड़

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

दें और उन्होंने अपने खास आदमी को बिठाकर कुर्सी छोड़ भी दी है, क्योंकि [illegible] प्रामाणिक है।" इस देश में 'रोटी' चुराने वाले को जेल हो जाती है और करोड़ों के घपले करके देश की संपत्ति को लूटने वाले हवाई-जहाजों में मौज करते हैं। स्थिति यहां तक पहुंच गई है कि एक सामान्य अभिधात्मक-सा लगने वाला वाक्य भी अब 'व्यंग्य-वाक्य' हो गया है – जैसे, 'फलां-फलां बड़ा प्रामाणिक आदमी हैं।" कोई मानने को तैयार नहीं होगा। अभिप्राय यह कि 'राग दरबारी' आज पचास साल के बाद भी उतना ही प्रासंगिक है जितना तब था।

(2) बुद्धिजीवियों की निर्वीर्य निष्क्रियता :

राग दरबारी उपन्यास के द्वारा उसके लेखक हमारे देश के बुद्धिजीवियों की कायर निष्क्रिय तटस्थता पर व्यंग्य-बाण चलाते हैं। दुनिया का इतिहास रहा है की जब-जब बुद्धिजीवी सक्रिय हुए हैं, इतिहास में एक नया परिमाण जुड़ा है। बांग्लादेश के बुद्धिजीवियों ने यह करके दिखाया । नवजागरण काल के बुद्धिजीवियों ने भी अपने समाज की तस्वीर को बदलने का प्रयास किया था, पर आज़ादी के बाद हमारे बुद्धिजीवी फिर लम्बी तान गये। सुख-सुविधाभोगी हो गये। जो प्रजा सुविधाभोगी हो जाती है वह निस्तेज और निर्वीर्य हो जाती है। उसकी कायतापूर्ण तटस्थता खटकने लगती है। 'राग दरबारी' रंगनाथ, प्रिंसिपल आदि बुद्धिजीवियों पर कटाक्ष करता है। आज के बुद्धिजीवी सिवाय भुनभुनाने के कुछ नहीं करते। विरोध करने की उनकी शक्ति खत्म हो चुकी है। गुण्डे, बदमाश, हरामी राजनीतिज्ञों के आगे बुद्धिजीवियों ने घुटने टेक दिये हैं।

(3) शिक्षा-जगत की दुर्गति :

लेखक को इस बात का बहुत दुःख है, मलाल है, कि जिस का दायित्व समाज की बागहोर को थामने का है, वह शिक्षा जगत ही भ्रष्टाचार, दुराचार, कदाचार का अड्डा बन गया है। शिक्षा जगत से जुड़े हुए लोगों में आत्मतेज होना चाहिए। उनमें स्वाभिमान और खुद्दारी होनी चाहिए। बजाय इसके आज शिक्षाचार्य राजनीतिक लोगों के तलवे चाट रहे हैं। छंगामल कालेज के प्रिंसिपल वैद्यजी के दरबार में सुबह-शाम हाजिरी बजाते हैं। लेखक की टिप्पणी है कि 'वर्तमान-शिक्षा-

पद्धति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है।'[31] मांझी ही अगर नाव डूबोने लगे तो आशा किससे रख सकते हैं। अभी कुछ वर्ष पूर्व की बात है गुजरात युनिवर्सिटी के कुलपति महोदय प्रदेश के मुख्य-मंत्रि के पैर छू रहे थे और मंत्रीजी भी बड़े मजे से पैर छुआ रहे थे। जब कुलपतियों की यह स्थिति है तो तेजस्वी अध्यापकों की आशा करना ही व्यर्थ है।

(4) राजनीति की गंदी छाया का प्रभाव :

'राग दरबारी' के लेखक की व्यथा का एक कारण यह भी है कि राजनीति की गंदी छाया ने जीवन के तमाम –तमाम मूल्यों को लील लिया है। गांव भी अब इस राजनीति से अछूते नहीं रह गये हैं राजनीति का होना बुरी बात नहीं है। पर हर क्षेत्र में राजनीति का पहुंच जाना सामाजिक स्वास्थ्य का अच्छा लक्षण नहीं है। शिक्षा में राजनीति नहीं होनी चाहिए, धर्म में राजनीति नहीं होनी चाहिए। पर सामयिक जीवन का कोई कोना बाकी नहीं बचा है जहां राजनीति न पहुंची हो। 'पीली छत्रीवाली लड़की उपन्यास में निरूपित विश्वविद्यालय से विश्वविख्यात प्रकार के प्रोफेसर बिदा ले रहे हैं क्योंकि विश्वविद्यालय राजनीति का अड्डा बन गया है। विश्वविद्यालय के वाइस चांसेलर अशोककुमार अग्निहोत्री ने राजनीतिक सांठगांठ से अपनी शक्ति को इतना बढ़ा लिया है कि कोई उसका कुछ नही बिगाड़ सकता। वह पानी पीने के लिए लंदन और पिशाब करने के लिए अमरिका जाता है। किसी समय की विश्वविख्यात युनिवर्सिटी को उसने बदमाशों का अड्डा बना रखा है।[32] व्यंग्य की पराकाष्ठा तो वहां पर है जहां विश्वविद्यालय के प्रकाशन विभाग में जिस व्यक्ति की नियुक्ति अंग्रेजी के संपादक पद पर हुई है उसके पास हिन्दी की डिग्री है और उसे अंग्रेजी का एक वाक्य लिखना नहीं आता। यह राजनीति का विस्थापन है। जहां राजनीति को नहीं होना चाहिए वहां राजनीति सबसे ज्यादा है। हमारी विदेश-नीति में राजनीति होनी चाहिए, पर वहां हम सही राजनीति करने में असफल रहे हैं।

(5) मूल्यहीनता की बोलबाला :

आज़ादी के बाद यदि किसी चीज का नाश सर्वाधिक रूप से हुआ है तो वह हैं जीवन-मूल्य। 'राग दरबारी' का लेखक इस तथ्य से अवगत है। छोटी-से छोटी बात में जीवन-मूल्य का आग्रह रखना भी अब असंभव होता जा रहा है। मूल्यहीनता ही मानो एक मूल्य हो गया है। वैद्यजी के दरबार में जितने भी लोग हैं या उनके दरबार में जिन-जिन की प्रशंसा होती है, वे सब अपने हरामीपन में पूरी तरह से पगे हुए लोग हैं। मूल्यो की, सिद्धान्तों की बात करने वाला व्यक्ति यहां मूर्ख समझा जाता है, उसे बांगड़ू पुकारा जाता है। एक स्थान पर रंगनाथ कहता है – 'पता नहीं चला कि प्रिंसिपल और खन्ना में क्या बात हुई। ड्रिल मास्टर बाहर खड़ा था। खन्ना ने चीखकर कहा, 'आपकी यही इंसानियत है। 'वह सिर्फ उतना ही सुन पाया। बद्री ने जम्हाई लेते हुए कहा, प्रिंसिपल ने गाली दी होगी। उसीके जवाब में खन्ना ने इंसानियत की बात की होगी। यह खन्ना इसी तरह बात करता है। साला बांगडू है।"[33] यदि खन्ना ने प्रिंसिपल की गाली के जवाब में गाली दी होती तो बद्री पहलवान की नजर में वह कुछ उठ जाता। इंसानियत की बात करने वाला व्यक्ति तो 'बांगडू' ही कहा जायेगा। इस मूल्यहीनता को रूपायित करने के लिए लेखक ने एब्सर्ड शैली का भी सहारा लिया है। तथा – "सभी मशीनें बिगड़ी पड़ी हैं। सब जगह कोई न कोई गड़बड़ी है। ... आसमान का कोई रंग नहीं, उसका नीलापन फरेब है। बेवकूफ लोग बेवकूफ बनाने के लिए बेवकूफों की मदद से बेवकूफों के खिलाफ बेवकूफी करते है। घबराने की, जल्दबाजी में आत्महत्या करने की जरूरत नहीं। बेईमान और बेईमानी सब और से सुरक्षित है। आज का दिन अड़तालीस घण्टे का है।"[34]

(6) ग्रामीण मासूमियत का लोप :

आज़ादी के बाद जो सबसे बड़ा नुकसान हुआ है वह यह कि 'अहा! ग्राम्य जीवन भी क्या है?' के आश्चर्य चिह्न के आगे एक बड़ा प्रश्नार्थ चिह्न लग गया। ग्राम्य-जीवन की वह सादगी, वह भोलापन, उसकी वह मासूमियत खत्म हो गई। आज वहां कांइयांपन है, हरामीपन है, धूतर्ता है। वहां वैद्यजी है, सनीचर है, कालिकाप्रसाद हैं, राधेलाल 'काना' है और इन सबके हरामीपन से गांव पूरी तरह

से पग गया है। गांवों की मासूमियत अब 'मिथ' बनकर रह गयी है। और इन सबके दर्द से 'राग दरबारी' का व्यंग्य सृष्ट हुआ है। हर बात को व्यंग्य में कहने का शौक लेखक को भी नहीं था, पर क्या करें! स्थितियां ऐसी बन गयी हैं कि अभिधा भी व्यंग्य में तब्दिल हो जाती है।

(ख) "मुझे चाँद चाहिए' की कथ्य-चेतना :

यहां भी 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास की कथ्य-चेतना को स्पष्ट करने के उपलक्ष्य में हमें तीन सोपानों से गुजरना होगा। -- (1) 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास की कथावस्तु, (2) 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास की चरित्र सृष्टि और (3) 'मुझे चाँद चाहिए' की कथ्य चेतना। किन्तु 'राग दरबारी' उपन्यास की भाँति यहाँ भी जो उदाहरण प्रस्तुत किए जायेंगे उनमें 'भाषिक-संरचना' का ध्यान तो रखा ही जायेगा।

(1) 'मुझे चाँद चाहिए' की कथावस्तु :

'मुझे चाँद चाहिए' नाटककार सुरेन्द्र वर्मा का एक नाट्य-उपन्यास है, उसका प्रकाशन सन् 1993 में हुआ था। यह उपन्यास खासा चर्चित उपन्यास रहा है। मेरी छोटी बहन कीर्तिदा देसाई (अब कीर्तिदा देसाई गौतम) तब कॉलेज में पढ़ती थी। उसने इस उपन्यास को कई-कई बार पढ़ा था। क्योंकि उसका प्रथम प्रेम नाटक था।वह सायकोलोजी पढ रही थी, पर साथ ही साथ हमारे परिवार की परंपरा के अनुसार, 'परफ़ोर्मिंग आट्स' से 'नाट्य विभाग' मे भी पढ़ रही थी। इसने इस उपन्यास के आधार पर कई पठनीय पुस्तकों की लिस्ट भी तैयार की थी। उपन्यास की नायिका वर्षा वसिष्ठ की भाँति वह भी पावलोविच चेखव की दीवानी थी। अभी सम्प्रति 'इमेज़िन' चैनल पर 'धर्मपत्नी' धारावाहिक में 'रीसर्चर के रूप में उसका नाम आ रहा है। अंत: उसके उस पागलपन के कारण मेरा ध्यान भी इस उपन्यास की और गया। कुछ समय बाद यह उपन्यास धारावाहिक रूप में दूरदर्शन पर आने लगा। अत: उसका अध्ययन और सघन हुआ।

जिस प्रकार 'गोदान' कृषक-जीवन का महाकाव्य है, ठीक उसी प्रकार प्रस्तुत उपन्यास को हम'नाट्य-जीवन का' महाकाव्य कह सकते हैं। जिस प्रकार

कुछ आलोचक महाकाव्य को दो कोटियों में विभक्त कर रहे है- एक जातीय जीवन का महाकाव्य, जैसे रामायण या 'राम चरित मानस' और दो, कलात्मक महाकाव्य, जैसे 'रामचन्द्रिका' या 'कामायानी';[35] ठीक उसी तरह यदि महाकाव्यात्मक उपन्यासों को दो कोटियों में विभक्त किया जाए तो 'मुझे चाँद चाहिए' को 'कलात्मकता' की कोटि में रखना पड़ेगा।

लगभग उसी समय के आसपास मैत्रेयी पुष्पा का बहुचर्चित उपन्यास 'इदन्नमम' भी प्रकाशित हुआ था और स्वाभाविक है कि इन दो की तुलनात्मक चर्चा हो और अतएव हुई भी। डॉ. प्रभा खेतान और पंकज बिष्ट इस इस उपन्यास को यथार्थ- प्रतिगामी बताकर जहां उसकी आलोचना करते है। वहां डॉ. परमानंद श्रीवास्तव तथा डॉ. पारूकान्त देसाई जैसे आलोचक उसके नाटकीय रूपबंध तथा विशिष्ट नगरबोध-संपन्नता के कारण उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते है।[36]

जो भी हो, उपन्यास ऐसा है कि औपन्यासिक रसिकों की दृष्टि से 'Unnoticed' नहीं रह सकता।

'मुझे चाँद चाहिए' एक नायिका –प्रधान उपन्यास है और उसकी नायिका है वर्षा वसिष्ठ। वर्षा की संघर्ष-यात्रा को हम तीन सोपानों में विभक्त कर सकते है – (क) शाहजहांपुर के मिश्रीलाल डिग्री कालेज से एन एस डी में वर्षा के प्रवेश मिलने तक की सघर्ष-गाथा, (ख) एन एस डी मे शुरूआती सघर्ष के बाद निरंतर वर्षा का ऊपर उठता कैरियर- ग्राफ़ और (ग) वर्षा वसिष्ठ का फिल्मी-संघर्ष, कलात्मक फ़िल्मों से व्यवसायिक फ़िल्मों, बोलीवुड से होलीवुड तक की उसकी संघर्ष-गाथा । उपन्यास में भी उक्त तीन कोटियों कों तीन खण्डों में रखा गया है। उपन्यास के अंत में 'उपसंहार' में 'प्रेम की अंतिम परिभाषा को रखा है। प्रथम खण्ड में चौदह परिच्छेद है। सभी के नाम काव्यात्मक है। प्रथम परिच्छेद 'विष-वृक्ष' में हमें ज्ञात होता है कि वर्षा वसिष्ठ का मूल नाम यशोदा शर्मा उर्फ़ सिलबिल था। कालिदास के 'ऋतुसंहार' से प्रेरित होकर वह स्वयं अपना नाम यशोदा शर्मा से वर्षा वसिष्ठ कर देती है। वर्षा के जीवन का पहला मोड़ तब आता है जब अंग्रेजी

की प्राध्यापिका दिव्या कात्याल लखनऊ से शाहजहांपुर आती है और कालेज का संस्थापक-दिवस शुष्क भाषणों के स्थान पर 'ध्रुवस्वामिनी के मंचन से होता है। दर्शनशास्त्र के प्रो उप्रेती के शब्दों में महानगर से जब कोई कोई युवा प्राध्यापिका आती है तो वह अपने साथ कई संक्रामक बीमारियों के कीटाणुं लेकर आती है।[37] दूसरे परिच्छेद 'सतरंगी इन्द्रधनुष' मे हम देखते है कि वर्षा का परिचय दिव्या कात्याल से होता है और उसके ही प्रयत्नो से वर्षा को डेढ-सौ रूपये माहवार का ट्युशन मिलता है वर्षा के सपनों को पंख लगने की शुरूआआत यहीं से होती है। आर्थडोक्स पिता किशनदास शर्मा को यह एक अकरणीय कार्य लगता है। उनकी टिप्पणी है'इस वंश की सात पीढियों में काम करने वाली वह पहली कन्या थी।[38]

तीसरे परिच्छेद 'रामजी की गाय' में वर्षा की बड़ी बहन गायत्री का विवाह निश्चित हो जाता है। चौथे-पांचवे परिच्छेद में संस्कृत नाटक 'अभिशप्त सौम्यमुद्रा' के मंचन की कथा उपन्यस्त हुई है। इसके सफल अभिनय के कारण वर्षा की कॉलेज में एक पहचान बनती है। वर्षा और दिव्या अब केवल गुरु-शिष्या न रहकर अंतरंग मित्र हो जाते हैं। वर्षा के लिए दिव्या मानो 'फ्रेण्ड फिलोसोफर एण्ड गाइड' बन जाती है, जो संयोग से सप्तम परिच्छेद का शीर्षक भी है। दिव्या की कंपनी में रहकर वर्षा के सपने अंकुराने लगते हैं। उसके सपनों का 'चाँद' यहां से आकार लेने लगता है। रविवार की सुबह वे दोनों प्रायः कोई-न-कोई अग्रेजी फिल्म देखने जाते हैं। शर्माजी के वश मे यह भी शायद सात पीढ़ियों में न हुआ होगा। 'सिटी लाइट', 'ब्रीज आन द रिवर क्वाई', 'ए प्लेस इन द सन', 'क्लियोपेट्रा', 'ए स्ट्रीटकार नेइम्ड डिजायर', 'गोड़फादर' जैसी फिल्मों को देखकर सिलबिल जेइम्स डीन और मांटगोमरी क्लिफ्ट की अंतर्मुखी सूक्ष्म अभिनय-शैली को समझने की क्षमता अर्जित करती जाती है। उसके मांसाहार का प्रारंभ अन्डाकरी से होता है। मिस कात्याल, डॉ. सिंहल, प्रो. चौधरी आदि से वर्षा को निरंतर प्रोत्साहन मिलता है।

मिस कत्याल लखनऊ में प्रशांत नामक इंजिनियर को प्यार करती थी। दो साल के लिए वह कलकत्ता चला जाता है। इस विरह-काल को काटने के लिए

तथा अपना थीसिस पूरा करने दिव्या शाहजहांपुर आयी थी। पर दिव्या को प्रेम-वंचना के दौर से गुजरना पड़ता है। दिव्या की माता उसे वापस लखनऊ बुला लेती है। दिव्या भी लखनऊ लौट जाना चाहती है। इससे वर्षा बुरी तरह से आहत होकर आत्महत्या का प्रयास करती है। वह स्वयं को ही 'अभिशप्त' समझने लगती है। किसी तरह डॉ. सिंहल बात को संभाल लेते है। अपनी इस भूल के बाद वर्षा स्वयं समझने लगती है कि अपना-अपना बोझ ढोने के लिए सभी अभिशप्त है। माता-पिता तथा भाई महादेव के विरोध के बावजूद वर्षा वेकेशन में लखनऊ जाती है। भाई महादेव के शब्दों में वर्षा का केस अब 'होपलेस' हो गया है।[39]

वर्षा का अनुभव-विश्व लखनऊ में और विकसित होता है। लखनऊ में मिट्टू, सुप्रिया रोहन, निहारिका, सुनील आदि तथा नाट्यदल 'बहुवचन' के सदस्यों से मिलना; नाटकों के रिहर्सलों का सिलसिला; 'शाहजहांपुर की मुमताज' के नाम से वर्षा का जाना जाना; वयस्क जीवन के प्रथम अनुभव के रूप में मिट्ठू द्वारा प्रथम चुंबन प्राप्त करना;[40] प्रथम एडवेन्चर आसव-पान के संदर्भ में 'मालविकाग्निमित्र' के संवाद का संदर्भ कि मदिरापान से स्त्रियां और भी सुन्दर लगने लगती हैं; भाई महादेव का इटावा की मोहिनी से विवाह; मोहिनी द्वारा अपनी ननद वर्षा को 'नौटंकी' का बिरूद; आगे पढ़ने के वर्षा के निर्णय के कारण भाई महादेव द्वारा वर्षा की पिटाई; नये साल में 'महानगरी' के अभिनय के कारण वर्षा के साथ 'ट्रेजेडी क्वीन' के टैग का लगना; इस बीच वर्षा के लिए रिश्तों का आना – पहला रिश्ता मकरौनी के नायब तहसीलदार नर्मदाशंकर की ओर से जो एक बच्चे के बाप थे, दूसरे रिश्ते में अनमोलभूषण जो भी दुहाजू थे और तीसरा रिश्ता बुलंदशहर से तीन मंजिला मकान, दुकान और पेट्रोल पंप के मालिक की ओर से जो तनिक हकलाते थे और तनिक लंगड़े थे जिसे दिव्या 'पेटी के नीचे के प्रहार' के रुप में लेती है।[41] इधर बहन गायत्री वर्षा के आगे एक ही राग आलापती है – 'अपना जीवन संवारो बहना।'

दिव्या कहती है कि उसके तीन वर्ष के शाहजहांपुर-निवास की दो उपलब्धियां रही हैं – वर्षा और थीसिस।[42] वर्षा ने एन.एस.डी. में प्रवेश-हेतु

आवेदन-पत्र भेज दिया था और फलतः उसे साक्षात्कार के लिए बुलाया जाता है। वर्षा जाने के लिए तैयार थी पर भाई महादेव उसे बाथरूम में बन्द कर देते हैं, तब किसी तरह पुलिस की धौंस देकर डॉ. सिंहल तथा उनकी धर्मपत्नी वर्षा को शाहजहांपुर स्टेशन छोड़ने में कामयाब हो जाते हैं। दूसरे दिन वर्षा दिल्ली के बहावलपुर हाउस पहुंच जाती है। वहां प्रत्याशियों की फर्राटेदार अंग्रेज़ी सुनकर प्रथमतः वर्षा में लघुताग्रंथि देखी जाती है। पूरे भारतदर्ष के महानगरों से लोग आये थे। चयन-समिति में एन.एस.डी. के निर्देशक का अटल, टाइम्स ऑफ इण्डिया के ड्रामा-क्रिटिक, दिल्ली युनि, के अंग्रेजी के प्रोफेसर, इन्फर्मेशन एण्ड ब्रोडकास्टिंग विभाग के सेक्रेटरी तथा उर्दू ड्रामेटिस्ट मंसूर थे। वर्षा के हौसले के तोते उड़ने लगते हैं पर हिम्मत करके वह साक्षात्कार देती है। पहले सवाल में ही उसने कह दिया कि सवाल उसे उसकी भाषा में ही पूछे जाएं और यहां पर वह बाजी मार लेती है। डॉ. अटल चयन-समिति के सदस्यों से कहते हुए सुने गये – 'प्लेन जेन के बारे में आपके क्या विचार हैं?'[43] वर्षा का चयन हो गया था और यही उसके जीवन का पहला पड़ाव था।

(ग) एन. एस. डी. में शुरूआती संघर्ष के बाद वर्षा के सपनों के बाद वर्षा का ऊपर उठता हुआ केरियर-ग्राफ:

उपन्यास का दूसरा खण्ड, वर्षा के सपनों के चाँद का दूसरा पडाव, पृष्ठ-97 से पृ.275 में उपन्यस्त हुआ है। एन. एस. डी. के प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम से ही वर्षा हो पसीने छूटने लगते हैं। पहले दिन का डॉ. अटल का संक्षिप्त व्याख्यान काफी प्रेरक था, विशेषतः यह वाक्य कि जब हर रात थकान से चूर होकर आप सोयें, तो आपको लगे कि इन चौबीस घण्टों में मेरा व्यक्तित्व कुछ और संपन्न हो गया है।[44] उसके बाद की घटनाओं में मोलियर के नाटक 'बेवफा दिलरूबा' में वर्षा की पहली प्रस्तुति का असफल रहना, उसमें उसे शोख किस्म की लड़की रेहाना का रोल मिला था, मां के संतोष के लिए रोहन से दिव्या का विवाह, चतुर्भुज धनसोखिया से वर्षा का परिचय, 'अपने अपने नर्क' में वर्षा की प्रस्तुति रिपर्टरी कलाकार की ऊंचाइयों को छूती नज़र आती है, उसका नायक हर्षवर्दन था, हर्ष

से परिचय, 'खड़िया का घेरा' में हर्ष अज़दक की भूमिका में अभिनय के झण्डे गाड़ चुका था और वह एक आई. ए. एस. पिता का बेटा था, आभिजात्य-गौरव का मालिक; 'अपने अपने नर्क' की वर्षा की प्रस्तुति से डॉ. अटल प्रसन्न और उनके द्वारा वर्षा की तुलना 'आइसबर्ग' से करना; [45] 'मैना-गुर्जरी' के पूर्वाभ्यास के दौरान गायत्री और उसके जीजा का वर्षा को दिल्ली आकर मिलना और समझाना; वर्षा का हर्ष के साथ प्रथम पुरुष – समागम; [46] वर्षा का भाई महादेव को साफ-साफ कह देना कि 'आईएम इन लव'; हर्ष के कायस्थ होने की बात सुनकर महादेव की छाती पर सांप लोटने लगते हैं; मांसाहार में वर्षा 'बीफ' को चख चुकी है और दूसरे मंजर के बाद डॉ. अटल अकान्वेण्टी पृष्ठभूमि वाली वर्षा को पसंद करने लगे हैं।; 'मिट्टी की गाड़ी की वेशभूषा के स्केच जब वर्षा एक दिन में तैयार करके डॉ. अटल को दिखाती है, तब डॉ. अटल का यह काम्प्लीमेण्ट – 'जो शब्द नेपोलियन के शब्दकोश में नहीं था वह वर्षा वसिष्ठ के शब्दकोश में नहीं था वह वर्षा वसिष्ठ के शब्दकोश में क्यों हो?' [47] इस तरह वर्षा को क्रमशः सफलता मिलती जाती है।

डॉ. अटल के नाट्य-समीक्षा से सम्बद्ध अमृत-वचनों से वर्षा का निरंतर प्रतिभा-संपन्न होते जाना, चेखव की 'हंसिनी' (सीगल) में वर्षा को चुनौतियों से भरा 'नीना' का रोल मिलना, अटल के होनहार छात्र आदित्य कौल से वर्षा का परिचय, वह फिल्मों में काम कर रहा था, उसके बम्बई जाने वाले प्रसंग को लेकर स्नेह की कविता – 'मंडी हाउस का शाप' स्नेह, हर्ष और आदित्य द्वारा 'पंचम वेद' नाट्य-मंडली की स्थापना; रीटा, कल्याणी, जानकी जयरमन आदि से परिचय; वर्षा को रिपर्टरी कंपनी में सी-ग्रेड का वेतनमान – 470-750 रूपये – मिलना; फलतः छात्रावास छोड़कर उसका कारोबार रहने जाना; हर्ष की बहन सुजाता से परिचय; हर्ष की मां हर्ष के लिए शिवानी का रिश्ता पसंद करती थी, पर सुजाता वर्षा के पक्ष में थी – "दैट गर्ल हैज कैरेक्टर, इनर स्ट्रेन्थ एण्ड डिग्नीटी।"[48] आदि घटनाओं में हम वर्षा के निरंतर ऊपर उठते ग्राफ को देख सकते हैं।

उसके बाद ब्रेश्ट को लेकर वर्षा का हर्ष से प्रथम मतभेद सामने आता है। श्रीराम सेण्टर, मोहनसिंह प्लेस आदि स्थानों का परिचय प्राप्त होता है। हर्ष हर

बात में वर्षा से अपनी मत-भिन्नता रखता है, जैसे वर्षा यदि टैनेसी विलियम्स की तारीफ करेगी तो हर्ष आर्थर मिलर को श्रेष्ठ बतायेगा। यहां ब्रेश्ट की 'ड्रामानिगार का नगमा' कविता से भी हमारा साक्षात्कार होता। इसके बाद की घटनाओं में हर्ष का निरंतर एरोगन्ट होते जाना, 'पझपंखुरी की धार और समी का पेड़' नाटक की सफलता पर वर्षा सारे राष्ट्रीय अखबारों पर छा जाती है; हर्ष को वर्षा से जलन होने लगती है, हर्ष का मुंबई जाना और कला-फिल्म 'कंपन' में स्थापित अभिनेत्री चारुश्री के साथ काम करना; हर्ष के आत्म-विश्वास का लौट आना; इस बीच हर्ष नशीली चीजों का सेवन करने लगा था; रिपर्टरी में वर्षा को बी-ग्रेड का मिलना; वर्षा का करोलबाल छोड़कर 31, जोड़बाग वाले बंगले में अनुपमा के साथ रहने जाना चतुर्भुज का सुशीला भाभी को छोड़कर अनुपमा से विवाह कर लेना; सुकुमार और रीटा की शादी और बाद में बबाल का होना; 'विषकन्या' की सफलता के बाद वर्षा को ए'ग्रेड मिलता है, वर्षा का ग्रीक ट्रेजेडी 'ट्रोजेन वीमैन' में सफल अभिनय, अकादमी एवोर्ड; 'कंपन' बाक्स-आफिस पर असफल पर कलात्मक फिल्मों का 'वेनिस एवोर्ड' प्राप्त करती है; स्नेह-पुरवाई की भी शादी हो जाती है; वर्षा के छोटे भाई किशोर की शादी बाराबंकी में तय होती है; वर्षा की मां का देहान्त हो जाता है; तीन साल के बाद वर्षा का शाहजहांपुर आना; घर के लोगों में कुछ बदलाव पाना; वर्षा की फर्राटेदार अग्रेजी से सबका हतप्रभ हो जाना; डॉ. सिहल तथा छगनलाल का वर्षा को लेने के लिए आना; सिद्धार्थ स्याल द्वारा वर्षा को 'जलती जमीन' में दाखां का रोल आफर करना और किशोर के यह पूछने पर कि – 'तुम कब ब्याह करोगी जिज्जी? वर्षा का कहना कि – "मैं तो लम्बी दौड़ का धावक हूं। मेरे साथ बस मेरा अकेलापन है।" [49] इन घटनाओं के साथ दूसरा खण्ड और वर्षा के जीवन का दूसरा पड़ाव समाप्त होता है।

(घ) वर्षा वसिष्ठ का फिल्मी-संघर्ष :

वर्षा वसिष्ठ के जीवन का तीसरा पड़ाव कुल पन्द्रह तथा उपसंहार का मिलाकर सोलह अध्याय और 278 पृष्ठों में उपन्यस्त हुआ है। 'जलती जमीन' में अभिनय की सूक्ष्मता नाट्य-विद्यालय की शिक्षा के कारण आयी हैं। दूसरे अध्याय

में वर्षा पुनः दिल्ली जोड़बाग आ जाती है। यहां वह शिवानी और दिव्या से मिलती है। 'जलती जमीन' और 'दाखा' की बातें होती हैं। फिल्म के निर्देशक सिद्धार्थ के संबंध में वर्षा कहती है कि शायद वह उसकी पहली संजीदा प्रेमिका निकले। तीसरे अध्याय में वर्षा पुनः मुंबई आ जाती है। फिल्म की डबिंग के लिए उसे मुंबई आना पड़ता है। मीरा और सिद्धार्थ उसे लेने आते हैं। सागर के साथ वर्षा की प्रथम नाटकीय समक्षता, व्यवसायिक फिल्मों के प्रोड्यूसर मि. नारंग फिल्म 'दर्द का रिश्ता' का आफर लेकर आते हैं, रहने की व्यवस्था भी वे ही करा देते हैं। ये तीसरे अध्याय की मुख्य घटनाएं हैं। 'दर्द का रिश्ता' की हीरोइन कंचनप्रभा वर्षा को हिकारत की दृष्टि से देखती है। हर्ष और रंजना के संबंध को लेकर वर्षा नाराज होती है, पर हर्ष उसे प्रोफेशनल बताता है। एक अर्से के बाद वर्षा को हर्ष के समृद्ध-संभोग का अनुभव होता है और वह महसूस करती है कि संभोग भीतर-बाहर को निर्मलता व स्फूर्ति प्रदान करता है।[50] 'आरती और अंगारे' फिल्म में वर्षा को बोलीवुड के स्थापित हीरो विमल के साथ काम करने का मौका मिलता है। 'दर्द का रिश्ता' में कंचनप्रभा कई बार वर्षा के डायलोग भी हड़प कर जाती थी। फिल्मी-जीवन का यह कुरूप चेहरा भी वर्षा के सामने आता है। परंतु 'आरती और अंगारे' में ऐसा नहीं होता। 'जलती जमीन' के अभिनय के लिए वर्षा को राष्ट्रीय पुरस्कार मिलता है। किशोर की शादी का तार मिलते ही वर्षा बम्बई से दिल्ली और दिल्ली से लखनऊ हवाई यात्रा से पहुंचती है। हर्ष की मां को एक माइल्ड-सा एटैक आता है। ये सब घटनाएं पांचवे अध्याय तक में उपन्यस्त हुई हैं।

'101, सिल्वर लैंड, मुंबई' वर्षा एक लक्जुरियस फ्लेट की मालकिन बनती है। गृह-प्रवेश के समय अनुपमा, शिवानी, दिव्या, स्नेह, इरावती, आदित्य, हर्ष, विमलजी आदि आते हैं। पांडेजी वर्षा के सचिव बनते हैं। हर्ष के ड्रग-एडिक्शन के कुछ संकेत भी यहां मिलते हैं। वर्षा के सामने फिल्मी-जीवन का एक और कुरूप चेहरा 'यलो जर्नालिज्म' तथा 'गोसिपिज्म' के रूप में आता है। विमलजी वर्षा को धीरज बंधाते है कि यहां मोटी चमड़ी रखे बिना काम नहीं चलता। वर्षा की बदनामी से उसके पिता व्यथित होते हैं पर वर्षा एक पत्र के द्वारा उनको आश्वस्त

कर देती है। वर्षा किसी फिल्म में अजय के साथ काम करती है। हर्ष को उसके साथ 'साइड-रोल' मिल रहा था, जिसे हर्ष यह कहकर ठुकरा देता है कि "मैं उस 'डमफोक' का साइडी बनूंगा?"[51] इसके बाद दसवें अध्याय तक की घटनाओं में निम्नलिखित मुख्य है – किशोर की पत्नी हेमलता और झल्ली (वर्षा की छोटी बहन) का मुंबई आना; पिता का तीर्थयात्रा पर जाना; विमलजी द्वारा वर्षा को 'पपी' (कुरुबक नामक श्वान) भेंट करना; एक के बाद एक वर्षा की फिल्मों का हिट होना; टी.वी. पर धारावाहिकों के युग की शुरुआत, कला फिल्म के रमन राजदां से वर्षा की झड़प, एंड्री और हर्ष की मित्रता; 'मुक्ति' एंड्री और रंजना की फिल्म; उसमें हर्ष के काम से वर्षा का संतुष्ट होना; कलात्मक क्षुधा की पूर्ति हेतु वर्षा का टाटा और पृथ्वी थियेटर में 'मालविकाग्निमित्र' और 'चार मौसम' नाटक करना; उस पर कंचनप्रभा के कटु कोमेण्ट्स कि अब वर्षा की आजीविका का स्रोत 'नोवेल्टी' और 'गैलेक्सी' की टिकिट खिड़की नहीं 'टाटा' और 'पृथ्वी की टिकिट खिड़की होगी'; [52] वर्षा द्वारा 'सूनी मांग का प्रतिशोध' में इमेज के खिलाफ़ जाकर काम करना; वर्षा की सिफारिश पर चतुर्भुज का फिल्मों में कोमेडियन के रूप में उभरना; रंभा के साथ विवाह करना; वर्षा को जोन विल्सन के निर्देशन में 'पैलेस ऑफ होप' करने का होलीवुड का आफर मिलना; हिन्दी फिल्मों के 'सुपर-स्टार' मैनाक के साथ काम करने का मौका भी वर्षा को मिलता है; रोबर्ट और जैनेट से वर्षा का परिचय; 'चन्द्रग्रहण' में सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार मिलना आदि-आदि।

दशवें आध्याय से पन्द्रहवे अध्याय तक में हम देखते हैं कि शिवानी-अश्विनीकुमार का अफेर टूट जाता है, वह विनय के साथ विवाह कर लेती है, अनुपमा भी मां के कहने पर उमेश से शादी कर लेती है, धारावाहिकों का रिपर्टरी पर बुरा प्रभाव पड़ता है, डॉ. अटल 'थियेटर आर्किटेक्चर' पर किताब लिखने के लिए लंडन चले जाते हैं, मंबई के प्रसिद्ध 'माखनचोर' परिवार के नैनरंजन के साथ झल्ली का विवाह हो जाता है, यह विवाह वर्षा ही करवाती है, इस बात को लेकर वर्षा के पिता उसके लिए कुछ कोमल हो जाते हैं, वर्षा के पिता को 'कुरुबक' से

चिढ़ इसलिए भी है कि वह कालिदास के प्रिय पुष्प का नाम था, [53] ड्रग-एडिक्शन से हर्ष की स्थिति में निरंतर गिरावट आती जाती है, उसकी रंजना और रंभा से भी खटक जाती है, 'मुक्ति' के प्रोड्यूसर मेघानी से भी हर्ष की झड़प होती है, 'मुक्ति' को लेकर रंजना का असली चरित्र सामने आता है, किसी तरह वर्षा 'मुक्ति' के लिए रास्ते तलाशती है तब रंजना पाँच लाख की मांग रखती है, चारुश्री बेंग्लोर के उद्योगपति से विवाह कर लेती है, 'डिटोक्सिकेशन' के लिए हर्ष डॉ. मर्चण्ट के अस्पताल में भर्ती होने के लिए राज़ी हो जाता है, वर्षा विमलजी की सहायता से फार्म-हाउस खरीदती है, रंजना गुलांट मारती है, रंभा चतुर्भुज को छोड़कर चली जाती है, चतुर्भुज एक छोटा-सा फ्लेट खरीदता है, गृह-प्रवेश के समय डॉ. अटल भी आते हैं, वे वर्षा के नाटक का निर्देशन करने आये थे, सभी पुराने साथी मिलते हैं, हर्ष भी प्रसन्न है, डॉ. अटल उसे खूब प्रोत्साहित करते हैं, परंतु अचानक आदित्य और स्नेह पिन्नक में आकर हर्ष के लिए अनाप-सनाप बकते हैं, हर्ष वहां से चला जाता है, वर्षा को 'पद्मश्री' का एवार्ड मिलता है, ड्रग का ओवरडोज़ लेने के कारण हर्ष की मृत्यु हो जाती है, वर्सोवा बीच, पर उसकी लाश मिलती है – 'कालिगुला' दो कुत्तों के बीच कुत्ते की मौत मरा था।'[54] -- इस बात को लेकर सुजाता वर्षा पर बिगड़ती है, वर्षा 'कुंवारी मां' बनने के लिए तैयार होती है। हर्ष की मम्मी वर्षा के इस निर्णय से प्रसन्न होती है, वह वसत-विहार का बँगला बच्चे के नाम करती है, इस बात से भी सुजाता अप्रसन्न होती है क्योंकि वह तो उस बच्चे को 'डिसओउन' करना चाहती थी।

अंतिम अध्याय उपसंहार में हम देखते हैं कि हर्ष की मम्मी का निधन होता है, वर्षा हेमंत (हर्ष का पुत्र) को जन्म देती है, उसकी 'आकाशदीप' हीट होती है, अंग-प्रदर्शन वाली एक और अभिनेत्री पल्लवी अनंग का फिल्म-जगत में प्रवेश होता है, पांडेजी पल्लवी के सचिव हो जाते हैं, सूर्यभान चाणक्य सीरियल में केन्द्रीय भूमिका निभाते नजर आते हैं, दिव्या का श्वासनली का केन्सर अंतिम स्टेज पर होता है, दिव्या की पुत्री प्रिया को इस काली वास्तविकता से परिचित कराने का कठिन दायित्व वर्षा पर आ जाता है, दिव्या हर्ष की आत्महत्या को

किसी काले क्षण में आदमी के कमजोर पड़ जाने का नतीजा मानती है,[55] दिव्या अपनी अंतिम इच्छा व्यक्त करती है -- "अनुपस्थित (मृत्यु के लिए 'इन केमेरा' में व्यवहृत शब्द) होने से पहले तुम्हें दुल्हिन बनी देख लूं"[56] वर्षा अपना प्रिय वाक्य दोहराती है – "कोई इच्छा अधूरी रह जाये, तो जिन्दगी में आस्था बनी रहती है"[57], सिद्धार्थ वर्षा को प्रपोज करता है, वह उसे उसके पुत्र के साथ अंगीकृत करने के लिए तैयार है, वर्षा सोचती है – 'अगर अब मैं चुनाव करूंगी, तो कसौटी कालिगुला की ही होगी कि किसी को प्रेम करने का अभिप्राय यह है कि वयक्ति के बगल में तुम वृद्ध होने के लिए तैयार हो।"[58] यही है वर्षा की प्रेम की अंतिम परिभाषा। वह सिद्धार्थ से सोचने के लिए समय मांगती है। 571 पृष्ठों का महाकाव्यात्मक उपन्यास बड़े ही गमगीन तरीके से मानो दम तोड़ देता है।

(2) 'मुझे चाँद चाहिए' की चरित्र – सृष्टि :

इस उपशीर्षक को हम निम्नलिखित उप-उपशीर्षकों में विभक्त करेंगे – (क) प्रमुख चरित्र, (ख) वर्षा के परिवार जन, (ग) हर्ष के परिवार-जन, (घ) नाट्य-जगत से जुड़े हुए लोग, (च) फिल्म-जगत से जुड़े हुए लोग और (छ) अन्य पात्र।

(क) प्रमुख चरित्र : उपन्यास के प्रमुख चरित्रों में वर्षा वसिष्ठ, हर्षवर्धन दिव्य कत्याल, डॉ. अटल आदि की गणना कर सकते हैं। अब इन चरित्रों पर बहुत संक्षेप में विचार किया जायेगा। ध्यान रहे ये विशिष्ट चरित्र है, वैयक्ति चरित्र (Individual characters) न कि वर्गीकृत (Typical)। साथ ही ये गतिशील चरित्र हैं। इनमें कुछ अंतुर्मुखी हैं, तो कुछ बहिर्मुखी और कुछेक में दोनों के ट्रेट्स मिलते हैं।

वर्षा वसिष्ठ : 'मुझे चाँद चाहिए' नायिका प्रधान उपन्यास है और वर्षा उसकी नायिका है। उसका मूल नाम तो यशोदा शर्मा था, पर उसने स्वयं अपने नाम को बदलकर 'वर्षा वसिष्ठ' कर दिया था। घर में उसे सब, अनुष्टुप तोता तक 'सिलबिल कहते थे। उसकी मनस्विता का पता यहीं से चलता है। कहते हैं न – "होनहार बिरवान के होत चिकने पात। उसका दूसरा साहसिक कदम है – शाहजहांपुर जैसे कस्बाई वातावरण में 'सौम्यमुद्रा' के रोल को बखूबी मंचित

करना, जहां लोग नाटक को 'नौटंकी' कहते हैं। घर के सभी लोगों के विरोध के बावजूद, भाई और पिता से पिटाई के बावजूद, एन. एस. डी. में साक्षात्कार हेतु दिल्ली बहावलपुत हाउस जाना और सिलेक्ट होना। यह उसका तीसरा साहसिक कदम है। वर्षा की इस शक्ति और प्रतिभा को पहचानने का काम लखनऊ से आयीं दिव्या कात्याल करती हैं जो अंग्रेजी की प्राध्यापिका थीं। वर्षा के जीवन का दूसरा मोड़ एन. एस. डी. में उसके चयन से होता है जहां उसकी तुलना प्लेन जेन से होती है। [59] प्रथम प्रस्तुति की असफलता के बाद 'अपने अपने नर्क' में वह शान्या के रोल को बखूबी निभाती है। एन. एस. डी. के निर्देशक डॉ. अटल उसकी तुलना 'आइसबर्ग' से करते हैं। 'अपने अपने नर्क' का नायक हर्ष था जो वर्षा का सीनियर था और एन. एस. डी. में अभिनय के झण्डे गाड़ चुका था। वह 'आलालेर घरेर दुलाल' याने बड़े बाप का बेटा था। यहां से हर्ष-वर्षा के प्रेम की शुरुआत होती है। उसके बाद वर्षा की नाट्य-कैरियर का ग्राफ निरंतर ऊपर जाता है और वह रिपर्टरी में सी-ग्रेड से ए-ग्रेड तक पहुंचती है और सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का अकादमी एवार्ड जीतती है। 'जलती जमीन'- नामक कला-फिल्म में उसे प्रथम ब्रेक मिलता है जिसमें उसे राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त होता है। यह उसके जीवन का तीसरा मोड़ है। रंगमंचीय अभिनय की दक्षता के कारण तथा अपनी सूझ-बूझ, संघर्षकामिता फिल्मों में भी उसे अभूतपूर्व सफलता मिलती है। दिव्या, डॉ. अटल, हर्ष, सिद्धार्थ, विमलजी आदि वर्षा की उन्नति में सहायक बनते हैं, पर वह सफल होती है अपने आंतरिक गुणों, प्रतिभा और जिजीविषा से। उसका संघर्ष cचौमुखी है – पारिवारिक, अकादमिक, फिल्मी-जगत मे पीली पत्रकारिता और गोसिपीज्म के खिलाफ़ और हर्ष की निरंतर बिगड़ती स्थिति के लिए उसका भावनात्मक संघर्ष। 54, सुल्तानगंज, शाहजहांपुर से 101, सिल्वर सैण्ड, वर्सोवा बीच, मुंबई तक की उसकी यात्रा अनेक संघर्षो से भरपूर है। आलोचकों ने शिवानी कृत 'कृष्णकली' की कली को लेखिका की 'लौहसंकल्पिनी मानस-संतान' कहा है,[61] परन्तु डॉ. पारूकान्तु देसाई ने प्रस्तुत उपन्यास की वर्षा को उपन्यासकार सुरेन्द्र वर्मा की 'लौहसंकल्पिनी मानस-संतान' कहा है।[62] अपने एकनिष्ठ प्रेम के कारण वह हर्ष के

पुत्र की 'कुंवारी मां' बनती है, क्योंकि एक काले क्षण में ड्रग के ओवर डोज़ के कारण वह आत्महत्या कर लेता है। इस प्रकार वर्षा के चाँद को ग्रहण लग जाता है, दूसरी और वर्षा को उसकी फिल्म "चन्द्रग्रहण' के लिए सर्वश्रेष्ठ फिल्म-अभिनेत्री का एवार्ड मिलता है। जोन विल्सन द्वारा निर्देशित होलीवुड की फिल्म 'पैलेस ऑफ होप' में उसे मुख्य भूमिका मिलती है, पर उसकी 'होप का पैलेस' तो भरहरा जाता है।

हर्षवर्द्धन : हर्ष इस उपन्यास का नायक है। एन. एस. डी. का एक अत्यंत होनहार अभिनेता। दिल्ली के नाट्य-समीक्षकों में उसे 'कालिगुला' के नाम से नवाजा गया है। आई.ए.एस. पिता का लाड़ला पुत्र। 'अपने अपने नर्क' में वर्षा का हीरो वही था। वहां से दोनों की प्रेम-यात्रा का प्रारंभ होता है। 'कंपन' नामक कला-फिल्म में उसे ब्रेक मिलता है। 'कंपन' को विश्वविख्यात 'वेनिस एवार्ड' मिलता है, पर फिल्म बाक्स आफिस पर पीट जाती है। हर्ष का चरित्र ईगोइस्ट है। उसकी आभिजात्य पृष्ठभूमि भी शायद उसमें कारणभूत है। व्यवहारिकता और सूझ-बूझ के कारण वर्षा जहां बोलीवुड में सफल होती है, वहां अपने जिद्दी और हठी स्वभाव के कारण, कलात्मक समझौते न कर पाने के कारण, उसका बड़ा ही बुरा हश्र होता है। वर्सोवा बीच पर दो कुत्तों के बीच में 'कालिगुला' कुत्ते की मौत मारा जाता है। ड्रग के ओवरडोज के कारण उसकी मौत हुई थी। रंजना की गद्दारी और मित्रों के कटुवचन उसकी खुद्दारी को लेडूबते हैं। एक होनहार, प्रतिभावान, अत्यन्त असाधारण व्यक्ति का साधारण अंत ग्रीक ट्रैजेडीकी याद दिलाता है। डॉ. अटल हर्ष के संदर्भ में कहते हैं – "हर्ष का रोल को निभाने का थ्रस्ट मुझे ओलीवियर की याद दिलाता है, उसके समृद्ध स्वर और डिक्शन में बर्टन की नफासत और चमक है। ... उसकी शैली क्लिफ्ट की तरह प्रखर जटिल झौर सूक्ष्म है। वह डिनेरो के समान अपने चरित्र-विन्यास में नक्काशी करता है और उसमें डीन की तरह अपनी भूमिका से भी परे जाने की सामर्थ्य है। वह निःसंदेह आज के भारत का सर्वश्रेष्ठ अभिनेता है।"[63] पर शायद दिल्ली के हर्ष को मोहमयी

मायानगरी नहीं फलती है। एकनिष्ठ प्रेमिका के रूप में वर्षा की उपलब्धि ही शायद उसकी उपलब्धि है।

दिव्या कत्याल : वर्षा वसिष्ठ को वर्षा वसिष्ठ के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय दिव्या को जाता है। किसी व्यक्ति के चरित्र-निर्माण में शिक्षक का क्या योगदान हो सकता है, उसकर जीता-जागता उदाहरण दिव्या कत्याल है। दिव्या लखनऊ से शाहजहांपुर के मिश्रीलाल डिग्री कालेज में 'लियोन पर आयी है। उस समय वर्षा इंटरमीजिएट में थी। दिव्या प्रशांत को चाहती है। वह कलकत्ता चला जाता है, अतः उस विरह को काटने के लिए तथा अपना थीसिस पूरा करने के लिए दिव्या शाहजहांपुर आती है। दिव्या क्या आयी, वर्षा के व्यक्तित्व को एक नयी पहचान मिल गयी। शुष्क निरस भाषणों के स्थान पर मिश्रीलाल कालेज का वार्षिकोत्सव 'ध्रुवस्वामिनी' के मंचन से होता है। कालेज के इतिहास में भावपक्ष व कलापक्ष उभय दृष्टि से एक नया आयाम जुड़ता है। कुछ समय बाद दिव्या 'अभिशप्त' सौम्यमुद्रा' करवाती है और वर्षा से आग्रह करती है कि वह उसमें सौम्यमुद्रा की भूमिका को अंजाम दे – "तुम्हारे अंदर जो ज्वार भरा है उसे मुक्ति देने के लिए ढक्कन खोलने की जरूरत है ... तुम्हें अपनी अभिव्यक्ति के लिए एक माध्यम चाहिए।"[64] वर्षा के जीवन के प्रथम पड़ाव को आकार देनेवाली दिव्या ही है। एक प्रबुद्ध, प्रतिश्रुत, प्रतिभावंत शिक्षक की क्या भूमिका हो सकती है उसकी व्याख्या हमें दिव्या के चरित्र में मिलती है। दिव्या वर्षा के विश्व को निरंतर विशालता और व्यापकता देती जाती है। वेकेशन में वर्षा लखनऊ जाती है और वहां भी 'शाहजहांपुर की मुमताज' के रूप में अपने अभिनय के झण्डे गाड़ती है। प्रशांत दिव्या को धोखा देता है। प्रेम-वंचना से व्यथित दिव्या मां की खुशी के लिए रोहन से विवाह कर लेती है, पर उसके बाद उसकी दिव्यता व प्रसन्नता मानो लुप्त हो जाती है। वर्षा अपने दोनों पड़ाव – दिल्ली तथा मुंबई – सफलता से पार करती है, पर दोनों की मित्रता में कोई दरार नहीं आती। वर्षा की हर सफलता के समय दिव्या उपस्थित होती है, यहां तक कि संसार के मंच से 'अनुपस्थित' (इन केमेरा के शब्द) होते समय भी वह वर्षा के साथ ही थी। दिव्या की बेटी प्रिया को यह

कठोर-निर्मम वास्तविकता से पर्दा उठाने की कठिनतम जिम्मेदारी भी वर्षा के सिर पर ही आती है कि दिव्या की कण्ठनली का कैसर अंतिम स्टेज पर था। हर्ष की आत्महत्या पर वर्षा की कटु टिप्पणी पर दिव्या कहती है – "आत्महत्या इतनी जघन्य नहीं है, यह एक काले क्षण में आदमी के कमजोर पड़ जाने का नतीजा है।"[65] दिव्या का यह 'सूक्ति-वाक्य' ही उसके गहरे विषाद को रूपायित करने में सक्षम है। सचमुच में दिव्या वर्षा के लिए 'फ्रेण्ड फिलोसोफर एण्ड गाइड' है।

डॉ. अटल : डॉ. अटल एन. एस. डी. के डायरेक्टर हैं। नाट्य-विधा को समर्पित व्यक्तित्व। उनके छात्र सम्मानित-व्यंग्य में उनको 'डिक्टेटर' कहते हैं, क्योंकि प्रशिक्षणार्थियों से काम लेने में वे 'डिक्टेटर' ही थे। जानते हैं कि छात्र को चाक पर चढ़ाने से पहले उसकी मिट्टी को खूब निर्ममता से रौंदना पड़ता है। अपने नाम के अनुरुप ही वे अटल हैं, अपने काम और सिद्धान्तों में किसी प्रकार का समझौता नहीं। कला में 'परफैक्टनेस' के पुजारी। उपन्यास के द्वितीय खण्ड से उनकी एन्ट्री होती है। उनके प्रथम व्याख्यान से कुछ अंश उदृत करना चाहूंगी जो उनके चरित्र को न कैवल व्याख्यायित करता है, बल्कि उनकी गरिमा को भी इंगित करता है, यथा – "हो सकता है, शुरू में आपको हमारी प्रशिक्षण-पद्धति बेहद श्रमसाध्य, कठिन और आक्रमक लगे। पर में आपको विश्वास दिलाता हूं, रगमंचीय सर्वश्रेष्ठ के लिए और दूसरा विकल्प नहीं। ... जब हर रात थकान से चूर होकर आप सोयें तो आपको लगे कि इन चौबीस घण्टो में मेरा व्यक्तित्व कुछ और संपन्न हो गया है।... किसी भी मदद, जरूरत या शिकायत के लिए – चाहे वह मेरे ही खिलाफ़ क्यों न हो। -- आप जब चाहें, मेरे दरवाजे पर दस्तक दे सकते हैं। एक बात से आपको आगाह कर दूं। मुझे काहिली, वक्त की बर्बादी और बहानेबाजी से सख़्त नफ़रत है।"[66] उपन्यास में कई स्थानों पर उनके 'सूक्ति-वाक्य' यत्र-तत्र बिखरे हुए मिलते हैं जिनसे उनकी अटलता व्याख्यायित हुई है। वे सचमुच के जौहरी हैं। हीरों की परख है उन्हें। वर्षा के दूसरे पड़ाव की कमान उनके हाथ रही है। उनके कुछ वाक्यों को उदृत करने का मोह नहीं रोक पा रही हूं, यथा – "जो अभिनेता शारीरिक स्तर पर गोगो बना रहता है, वह संवेदना के स्तर पर वर्शिनिन

नहीं बन सकता... रंगमंच आत्मरति का सिंहद्वार नहीं... प्रस्तुति के ताने-बाने में रुमाल उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना ओथेलो... एक सच्चे कलाकार को ये दोनों भूमिकाएं स्वीकार होनी चाहिए... जो अभिनेत्री शूद्रक की वसंतसेना बनना चाहती है, शेक्सपियर की डायन नहीं, उसे बहावलपुर में फांसी पर चढ़ा दिया जाना चाहिए... जो कलाकार नाट्य-समीक्षा में सबसे पहले अपना नाम ढूंढता है, उसकी सही जगह बहावलपुर हाउस नहीं, साइबेरिया का यातना-शिविर है।"[67] ऐसे तो कई सूक्ति-वाक्य डॉ. अटल के मुंह से झरते रहते हैं जो उनके चरित्र को भी व्याख्यायित करते हैं। एक सच्चा शिक्षक क्या कर सकता है उसे हम दिव्या कत्याल तथा डॉ. अटल के चरित्र में देख सकते हैं।

(ख) वर्षा के परिवार-जन : वर्षा के घर-परिवार के लोगों में वर्षा के पिता किशनदास शर्मा, वर्षा के दो भाई – महादेव और किशार (क्रमशः बड़े-छोटे) – दो बहनें – गायत्री और गौरी (क्रमशः बड़ी और छोटी) – वर्षा की मां महोबावाली, महादेव की पत्नी मोहिनी, किशोर की पत्नी हेमलता आदि की गणना कर सकते हैं। वर्षा का बचपन का (घर का) नाम यशोदा था। उसी तरह गौरी का घर का नाम झल्ली है। शर्मा-परिवार में अनुष्टूप नामक तोते का भी समावेश कर सकते हैं। ये सब निम्न-मध्यवर्गीय चरित्र हैं और उनकी सोच भी वही पुरानी 'ओर्थोडोक्स' सोच है। इनमें किशोर और गौरी थोडे अलग पडते हैं। ये दोनों वर्षा के साहसपूर्ण कदमों के प्रशंसक हैं। बाकी सबका शुमार वर्गीकृत चरित्र (Typical characters) में कर सकते हैं।

(ग) हर्ष के परिवार-जन : हर्ष के घर-परिवार के लोगों में हर्ष के माता-पिता हैं। हर्ष के पिता आई. ए. एस. है और भारत सरकार में किसी ऊंचे ओह्दे पर आसीन है। उनका बँगला वसंत-विहार में है और मुनरिका में भी एक फ्लेट है। इससे उनके उच्च-स्तर का पता चलता है। हर्ष की बहन सुजाता समाजशास्त्र की व्याख्याता है और जे.एन.यू. के एसोसिएट प्रोफेसर से उसकी मित्रता है जो बाद में परिणय में परिणत होती है। हर्ष के माता-पिता हर्ष का सम्बन्ध शिवानी से करवाना चाहते थे जिसका ताल्लुक एक औद्योगिक घराने से है, परन्तु सुजाता ही अपने माता-पिता

को वर्षा के लिए राज़ी करती है। इनके अतिरिक्त नवीन मामा है जो मुंबई में रहते है। इस प्रकार हर्ष के घर-परिवार वाले उच्च-वर्गीय हैं और इनमें से कुछेक पात्र वैयक्तिक चरित्र की कोटि में आते हैं तो कुछेक पात्रों को हम वर्गीकृत चरित्र की कोटि में रख सकते हैं।

(घ) **नाट्य-जगत से जुड़े हुए लोग** : नाट्य-जगत से जुड़े हुए पात्रों में दिव्या तथा उसके लखनऊ-स्थित नाट्य-मंडल के सदस्य ; वर्षा के एन. एस. डी. में आने के बाद उसके जिन-जिन लोगों से परिचय होता है वे तमाम पात्र – सूर्यभान एन. एस. डी. के भूतपूर्व छात्र तथा रिपर्टरी के संचालक, चतुर्भुज धनसोखिया, रीटा, अनुपमा, ममता लहरिया, सोमेशजी (अंग्रेजी अख़बार के नाट्य-समीक्षक), शशांक (युगान्तर नाट्य-संस्था के संचालक), शालिनी कात्यायन (इंडियन-एक्स्प्रेस की नाट्य-समीक्षक), अर्चना संतोषी, कल्याणी, स्नेह आदि नाट्य-जगत और रिपर्टरी के कलाकार की गणना इस कोटि में की जा सकती है। इनमें से अधिकांश पात्रों को हम वैयक्तिक चरित्र की कोटि में रख सकते हैं।

(ङ) **फिल्म-जगत से जुड़े हुए लोग** : वर्षा के जीवन का तीसरा पड़ाव उसकी बोलीवुड से होलीवुड की यात्रा है। अतः उपन्यास में फिल्म-जगत से जुड़े हुए लोग भी आते हैं। ऐसे पात्रों में सिद्धार्थ (वर्षा को प्रथम कला-फिल्म 'जलती जमीन' में ब्रेक देनेवाले), विमल (मुख्यधारा सिनेमा के एक स्थापित अभिनेता), नारंग (फिल्म प्रोड्यूसर जो वर्षा को व्यावसायिक फिल्म 'दर्द का रिश्ता' में ब्रेक देते हैं), नीरजा (नारंग साहब की बेटी), कंचनप्रभा (व्यावसायिक फिल्मों की अभिनेत्री), चारुश्री (व्यावसायिक फिल्मों की अभिनेत्री, हर्ष की कला-फिल्म 'कंपन' की नायिका), नरेश (जलती जमीन का नायक) मीरा (सिद्धार्थ के यूनिट की एक लड़की जो अपनी एक कला-फिल्म "चन्द्रग्रहण' बनाती है जिसमें संबंधों के कारण वर्षा कम रेट पर काम करती है), पांडेजी (वर्षा के सचिव), पल्लवी अनंग (नयी अभिनेत्री), मीता (विमल की पुत्री), शोभा (विमल की पत्नी), हुसैनभाई ('दर्द का रिश्ता' के डायरेक्टर), अहसास हैदराबादी (फिल्मी संवाद-लेखक), आदित्य (एन. एस. डी. के प्रथम छात्र जिनको फिल्मों में ब्रेक मिलता है), सुंदरम (कला-

फिल्मों के निर्देशक), इरावती (आदित्य की पत्नी), तुलसियानी (दक्षिण का एक फिल्म-प्रोड्यूसर), दिना दस्तूर (फिल्मी पत्रकार – गोशिपकार), सुभद्रादेवी (पुरानी अभिनेत्री) आदि आदि की गणना कर सकते हैं।

(च) अन्य पात्र : उपन्यास के अन्य पात्रों में डॉ. सिंहल (शाहजहांपुर के एक सम्मानित नागारिक जिनका मिश्रीलाल डिग्री कालेज के विकास में तथा वर्षा को प्रोत्साहित करने वालों में मुख्य स्थान है), मिसेज सिंहल (डॉ. सिंहल की पत्नी), शिवानी (उद्योगपति पिता की बेटी जिसका संबंध हर्ष से होते-होते रह गया, पहले वर्षा की आलोचक बाद में मित्र), नैनरंजन (मुंबई के माखनचोर-परिवार का युवक जिसका विवाह बाद में वर्षा की छोटी बहन गौरी-झल्ली से होता है), गोपाल मिश्र ('माखनचोर' के संस्थापक), दिनदयाल (वर्षा के जीजाजी और गायत्री के पति), सुकुमार (रीटा का पति), बांकेबिहारी दीक्षित (डिप्टी कलक्टर, खुर्जा – वर्षा उनके रिश्ते को भी ठुकरा देती है), जमील (नशीली चीजों का विशेषज्ञ व सप्लायर), सतवंती (वर्षा के दिल्ली-स्थित मकान मालिक की पुत्री, जिसे वर्षा का काफी सहारा था, झुमकी (अनुपमा की नौकरानी जो बाद में वर्षा की भी नौकरानी बनती है), अश्विनीकुमार (हर्ष के बाद शिवानी का दूसरा प्रेमी), प्रिया (दिव्या-रोहन की बेटी), अजीमभाई (मुंबई के एक अच्छे बिल्डर), कुरुबक (वर्षा की कुतिया-पपी : वैसे कुरुबक कालिदास के एक प्रिय पुष्प का नाम भी) आदि-आदि की गणना कर सकते हैं।

'मुझे चाँद चाहिए' की चरित्र-सृष्टि पर एक विहंगम दृष्टिपात करने से ज्ञापित होगा कि नाट्य-जगत व फिल्म-जगत के एक विस्तृत फलक को यहां लिया गया है। ये पात्र तो उपन्यास में आने वाले व्यावहारिक जगत के पात्र हैं, या प्रत्यक्ष पात्र हैं; किन्तु यहां नाटकों और फिल्मों के भी कई-कई पात्रों का संदर्भ हमें मिलता है। उपन्यास की इस चरित्र-सृष्टि से गुजरने के उपरान्त भावक या पाठक का अनुभव-जगत और उसका सौन्दर्यबोध असंदिग्धतया विकसित और संपन्न होगा ऐसा हमारा नम्र अभिमत है। उपन्यासकार ने चारित्रिक विकास करते समय थेकरे के चरित्र-सृष्टि विषयक खयालों को ध्यान में रखा है ऐसा प्रतीत होता है – "I do

not control my characters, they take me wherever they please."[68] अर्थात मेरा मेरे चरित्रों पर कोई वश नहीं चलता, बल्कि वे मुझे जहां चाहें वहां ले चलते है। यह कहने के पीछे थैकरे का आशय यह है कि पात्र लेखक के हाथ की कठपुतली नहीं होने चाहिए। एक बार जहां लेखक अपने पात्रों का रेखांकन कर लेता है, उसके बाद उसे चाहिए कि वह अपने पात्रों को खुला छोड़ दें और उनको उनके स्वभाव व प्रकृति के हिसाब से आगे बढ़ने दें। हमें संतोष है कि सुरेन्द्र वर्मा ने ऐसा करके पात्रों को चरित्रों में परिवर्तित किया है।

(3) 'मुझे चाँद चाहिए' की कथ्य चेतना :

कथावस्तु और चरित्र-सृष्टि को देख जाने पर अब उपन्यास की 'कथ्य-चेतना' को समझने में आसानी रहेगी। 'कथ्य-चेतना' से हमारा अभिप्राय यह है कि इस उपन्यास के द्वारा लेखक क्या कहना चाहता है, उसका उद्देश्य क्या है, उसने यह उपन्यास क्यों लिखा? उसके इस प्रयास से साहित्य या समाज में कितने आवर्तन पैदा हुए? क्योंकि यह तो पहले ही बता दिया गया है कि उपन्यास का उद्देश्य महज कहानी कहना नहीं होता। उपन्यासकार साहित्यकार होता है और साहित्यकार का स्थान तो हमेशा सर्वोपरि रहा है। वह कवि, ऋषि मनीषी होता है।

उपन्यास के प्रारंभ में कालिगुला का वह संवाद दिया गया है – "अचानक मुझमें असंभव के लिए आकाक्षा जागी। अपना यह ससार काफी असहनीय है, इसलिए मुझे चंद्रमा, या खुशी चाहिए – कुछ ऐसा, जो वस्तुतः पागलपन-सा जान पड़े। मैं असंभव का संधान कर रहा हूं... देखो तर्क कहां ले जाता है – शक्ति अपनी सर्वोच्च सीमा तक, इच्छाशक्ति अपने अनंत छोर तक शक्ति तब तक सम्पूर्ण नहीं होती, जब तक अपनी काली नियति के सामने आत्मसमर्पण न कर दिया जाये। नहीं अब वापसी नहीं हो सकती। मुझे आगे बढ़ते ही जाना है ..."[69]

और यही इस उपन्यास का संदेश है। असंभव की आकांक्षा। संभव तो सभी चाहते हैं, पा भी लेते हैं, पर बिरले ही होते हैं जो इस 'चाँद' को प्राप्त करना चाहते है। संसार के व्यावहारिक लोगों को, समझदार लोगों को, हो सकता है, ऐसे लोग पागल लगें। पर लगें तो लगें। हमें तो बस चाँद चाहिए। उसके लिए तर्कातीत

सोचना होगा, शक्ति को अपनी सर्वोच्च सीमा तक जाना होगा, इच्छाशक्ति को अपने अनंत छोर तक जाना होगा। वर्षा वसिष्ठ भी यही असंभव का संधान कर रही है। अन्यथा कहां शाहजहांपुर का कस्बाई वातावरण और कहां मुंबई का सिल्वर लैंड। एक् कस्बाई लड़की का प्लेन-जेन में परिवर्तित होना। डॉ. अटल ठीक ही कहते हैं – "जो शब्द नेपोलियन के शब्दकोश में नहीं था, वह वर्षा वसिष्ठ के शब्दकोश में क्यों हो?"[70]

वर्षा वसिष्ठ के चरित्र को देखकर दो पंक्तियां स्मृति में कौंध रही है ---

"इरादों की बुलंदियों के आगे कुछ भी मुहाल नहीं ;

बस दो बातें हैं – इरादा हो और पक्का हो।"[71]

इसी संदर्भ में एक दोहा भी ---

"एक बिघनन से ना बढ़े, एक बिघनन बिदकाय।

पर बिघनन को बेधकर, बिरला बढ़ता जाय ॥"[72]

और वर्षा अपने लौह-संकल्प से तमाम-तमाम विघ्नों के चक्रव्यूह को भेदकर निकल जाती है। वर्षा जैसे चरित्र का निर्माण करके लेखक यही बताना चाहते हैं कि यदि कोई नारी सचमुच में ठान ले, कालिगुला वाली भाषा में सोच लें तो उसकी विकास-यात्रा को कोई नही रोक सकता। यह उपन्यास मेहता लज्जाराम शर्मा के उपन्यास – 'स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी' – से बिल्कुल दूसरे छोर पर है। नियति के अधेरे कक्षो को शिक्षा के प्रकाश से ही उज्जवल बनाया जा सकता है।

डॉ. मोहम्मद अज़हर ढेरीवाला ने इस उपन्यास के संदर्भ में लिखा है – "वर्माजी द्वारा आकलित नगरीय – महानगरीय चित्रण नगरीय जीवन के स्थूल क्लेवर को तो रेखांकित करता है, परंतु उसके एक सूक्ष्म अभिलक्षण 'नारी-चेतना' को अधिक विकसित नहीं करता। लेखक की नारी-चेतना 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी' या 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' से आगे नहीं बढ़ती।"[73]

शायद डॉ. ढेरीवाला वर्षा के चारित्रिक–आकलन में थाप खा गये हैं। अपने असफल प्रेमी के गर्भ को वर्षा जन्म देती है। कुंवारी माता बनती है। इसे शायद डॉ.

ढेरीवाला गुप्तवादी या छायावादी भावुकता बताते हैं। उनको शायद लगता है कि हर्ष जैसे गैरजिम्मेदार व्यक्ति के लिए वर्षा का कुंवारी मां बनना छायावादी भावुकता है, पर ऐसा नहीं है। वर्षा यदि 'अबोर्ट' करा देती तो क्या वह मानवता के पक्ष में होता? दूसरे उपन्यास के अंत में ऐसा कोई संकेत नहीं है कि वर्षा ताजिन्दगी 'सिंगल' रहेगी। उपन्यास के अंत भाग में लेखक का कथन है – "धीरे-धीरे वर्षा अंधेरे की वादी से तो निकल आयी थी (विषाद भी टिकाऊ नहीं हो सकता। विषाद भी दंभ है, उसे 'कालिगुला' का संवाद याद आया), लेकिन स्मृतियों का कंटक-पथ चल रहा था, लगता था, अभी चलेगा – देर तक ... शायद आखिर तक ..."[74] और "आहिस्ता-आहिस्ता हर्षविहीन जिन्दगी की आदत पड़ने लगी थी। अनुपस्थित हर्ष को संबोधित करना कम हो गया था। कसी हुई जीवन-शैली में अवकाश के दो-चार पल मिलते, तो अपने भावात्मक अकेलेपन का एहसास होता। ... दो पुरुषों ने थोड़ी मैत्री-परिधि में कदम रखा था। दिल्ली के पुराने परिचित चित्रकार असीम अब बम्बई आ गये थे। न्यूयोर्क के एन.आर.आई. सुशील भी वर्षा को पसंद आये थे। फिल्म की योजना को अंतिम रूप देने के लिए वह जल्दी ही बम्बई आ रहे थे।... भीतर की हल्की मुस्कान के साथ वर्षा ने सोचा, अगर अब मैं चुनाव करूंगी, तो कसौटी कालिगुला की ही होगी – "किसीको प्रेम करने का अभिप्राय यह है कि उस व्यक्ति के बगल में तुम वृद्ध होने के लिए तैयार हो।"[75]

ऐसा लगता है कि 'मुझे चाँद चाहिए' का प्रकाशन सन 1993 में हुआ था और उन्ही दिनों में मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'इदन्नमम' की भी धूम थी और इन दोनों उपन्यासों की बड़ी जमकर आलोचनाएं आयी थीं, विशेषतः 'हंस' में, अतः कई पत्रिका-पंडितों ने (आजकल के इण्टरनेट-पंडितों की तरह) प्रस्तुत उपन्यास की वर्षा के साथ मैत्रेयी के 'इदन्नमम' की नायिका मंदा की तुलना शुरू कर दी थी, हालांकि दोनों उपन्यास की पृष्ठभूमि अलग-अलग है। 'मुझे चाँद चाहिए' में जहां नगरीय-महानगरीय जीवन है, वहां 'इदन्नमम' में ग्रामीण पृष्ठभूमि है। वर्षा का संघर्ष जहां कलात्मक-जगत, नाट्य-जगत और फिल्म-जगत से है; वहां मंदा का

संघर्ष समाज, परिवार और राजनीतिक लोगों से है। किन्तु दोनों का उद्देश्य शायद एक़ ही है। दोनों नायिकाएं अपने-अपने क्षेत्रों में कठिन परिश्रम और संघर्ष के द्वारा एक निश्चित मकाम हासिल करती हैं।

डॉ. ढेरीवाला की आलोचना में कई अंतर्विरोध हैं, उपर्युक्त कथन के तुरन्त बाद वे लिखते हैं – "570 पृष्ठों के इस बृहतकाय उपन्यास की कुल कथा इतनी है कि उत्तरप्रदेश के एक सामान्य निम्नमध्यवर्गीय कस्बाई परिवेश की सिलबिल उर्फ यशोदा शर्मा उर्फ वर्षा वसिष्ठ 54, सुलतानगंज, शाहजहांपुर से उठकर बम्बई में वर्सोवा बीच स्थित 'सिल्वर लैंड' के एश्वर्यमंडित फ्लेट में पहुंच जाती है। 'पढ़िये गीता बनिये सीता और घर की बड़ी पतीली में भरभर भात पकाइये 'या' बच्चे जनकर जीवन संवारने वाली मानसिकता, या पति-भक्ति करो हमेशा रहते जीवन, पति-भक्ति सती-साध्वी करती प्रणयन' जैसी आदर्शवादिता से ऊपर उठकर वह बोलीवुड और होलीवुड की एक प्रतिष्ठित अभिनेत्री बन जाती है। नवीं कक्षा में यशोदा शर्मा से वर्षा वसिष्ठ के रूप में नामान्तरण उसका प्रथम साहस था, कालेज के सांस्कृतिक कार्यक्रम में 'सौम्यमुद्रा' का अभिनय दूसरा साहस तथा नेशनल स्कूल आफ ड्रामा' के साक्षात्कार के लिए घर-परिवार से विद्रोह कर दिल्ली पहुचना उसका तीसरा साहस था।"[76]

स्वयं लेखक (डॉ. ढेरीवाला) कबूल करते हैं कि वर्षा रूढ़िवादी नारी-सोच से ऊपर उठ गई है। उपर्युक्त तीन-तीन प्रकार के साहस करने वाली लड़की की सोच 'अबला जीवन वाली' या 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो, वाली तो कतई-कतई नहीं हो सकती और उपर्युक्त तीन साहसों की कथा तो फकत पहले खण्ड में ही आ जाती है। उसके बाद वर्षा और दो मुश्किल पड़ाव सर करती है। अतः हमारा मानना है कि वर्षा एक दृढ़ मनोबल वाली, निरंतर संघर्ष करने वाली, कठिन परिश्रम और मेहनत से आगे बढ़ने वाली, भयंकर रूप से जीवट वाली, जूझारूपन की अनोखी मिसाल और अदम्य जिजीविषा से भरपूर नारी है, मैत्रेयी की मंदा और सारंग की तरह। और न केवल वह स्वयं उठी है, उसने अपने घर-परिवार को

भी ऊपर उठाया है। उसकी परिवार-प्रतिश्रुतता के कई प्रमाण उपन्यास में मिल जाते हैं।

दूसरी एक बात जो जहां ध्वनित होती है वह भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। व्यक्ति के जीवन में ही गुरु या मार्गदर्शक का महत्व। अर्जुन के पीछे गुरु द्रोण थे, चन्द्रगुप्त के पीछे चाणक्य थे, सिकन्दर के पीछे अरस्तू थे। अभिप्राय यह कि गुरु या मार्ग-दर्शक का व्यक्ति के जीवन में अपरिहार्य स्थान है। वर्षा वसिष्ठ को वर्षा वसिष्ठ बनाने में दिव्या कत्याल और डॉ. अटल का योगदान महत्वपूर्ण है।

यह उपन्यास उन लोगों के लिए आईना है जो यह समझते हैं कि कलाकार जन्मजात होते हैं और जिनमें यह नैसर्गिक प्रतिभा होती है वे चुटकी बजाते हुए, अवसर मिलते ही सफलता के शिखर पर पहुंच जाते हैं। यह सही है कि कलाकार में प्रतिभा होनी चाहिए, पर प्रतिभा के बाद भी उसमें निखार लाने के लिए, धार लाने के लिए उन्हें रात-दिन खटना पड़ता है। कोई व्यक्ति यों ही कलाकार नहीं बन जाता। उसके लिए उसे कड़ा परिश्रम करना पड़ता है, कठोर संघर्ष करना पड़ता है, मन को हजार बार मारना पड़ता है, बड़े कठिन और कठोर-निर्मम अनुशासनों से गुजरना पड़ता है। एन. एस. डी. में प्रेवेश पाने के उपरान्त वर्षा जब प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम पर नज़र डालती है तो उसे पसीना छूट जाता है। यथा – "नाट्य-सिद्धान्त और नाटक के इतिहास के साथ के चार संस्कृत नाटक, छः आधुनिक भारतीय नाटक, चार एशियाई नाटक और छः पश्चिमी नाटकों का अध्ययन करना था। व्यावहारिक पक्ष में अभिनय के अंग थे – शरीर के लिए योग, नृत्य-गतियां, मूकाभिनय, इम्प्रोवाइजेशन, जूड़ो, मणिपुरी युद्ध कलाएं और आधुनिक नृत्य। स्वर के लिए स्पीच, संगीत, वायस प्रोडक्शन, व्याख्या, नाट्य-प्रदर्शन और हर वर्ष एक पारंपरिक लोकनाट्य में प्रशिक्षण। इसके साथ मंच-रचना, वेशभूषा-रचना, प्रकाश-व्यवस्था और मेकअप। थियटर आर्किटेक्चर में संस्कृत, ग्रीक, रोमन, मध्यकालीन, एलिजाबेथन, उन्निसवीं शताब्दी का तथा पारंपरिक भारतीय एवं आधुनिक प्रोसेनियम, मुक्ताकाशी और एरीना थियेटर का लेखाजोखा। प्रदर्शन पक्ष में हर साल छः प्रमुख प्रस्तुतियां थीं – एक संस्कृत या

पारंपरिक लोकनाट्य, दो आधुनिक भारतीय नाटक और तीन पश्चिमी नाटक। साथ में छः विद्यार्थी-प्रस्तुतियां और देश के विभिन्न भागों के दौरे।"[77]

अपने प्रथम व्याख्यान में ही डॉ. अटल स्पष्ट कर देते हैं – "अभी तक आपने शौकिया ढंग से रंगमंचीय गतिविधि में भाग लिया है। अब आप इस कला में विधिवत प्रशिक्षित होंगे, जो बेहद उत्तेजक, अत्यन्त कड़े अनुशासन से युक्त और आपके भावतंत्र एवं व्यक्तित्व में आमूल परिवर्तन लाने वाली साबित होगी। हो सकता है, शुरू में आपको हमारी प्रशिक्षण-पद्धति बेहद श्रमसाध्य, कठिन और आक्रामक लगे। पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूं,.रंगमंचीय सर्वश्रेष्ठ के लिए और दूसरा विकल्प नहीं। इन तीन वर्षों में आपको तन-मन के एक-एक पोर और एक-एक कोने से इस वातावरण की तरंगें जज्ब करनी हैं।"[78]

यह बातें इसलिए आवश्यक हैं कि बहुत-से लोग समझते हैं कि जिनमें प्रतिभा हैं ऐसे लोग बिना किसी सारस्वत-प्रयत्न के आराम के कलाकार होकर जिन्दगी के मजे लुटते रहते हैं। उन्हें उनका ऐशो-आराम और वैभव तो दिखता है पर उसे पाने के लिए उन्हें कितनी कठिनाइयों से गुजरना पड़ा है इसका अंदाजा उनको नहीं होता है। डॉ. अटल वर्षा को कहते हैं कि वह तो 'आइस-बर्ग' निकलीं79, पर मुझे लगता है कि प्रत्येक सफल व्यक्ति का व्यक्तित्व एक 'आइसबर्ग' ही होता है। लोगो को केवल उनके प्रयत्नों का छोटा-सा हिस्सा ही दिखता है। उस मकाम को हासिल करने के लिए उन्हें कितने पापड़ बेलने पड़े हैं उस तथ्य से वे अवगत नहीं होते। इस संदर्भ में शाहिर लुधियानवी का एक शेर श्रुतिगोचर हो रहा है –

"जो धुन साज़ से निकली है, वह सबने सुनी है,
जो साज़ पे गुजरी है, किस दिल तो पता है?"[80]

शाहिर तो साज़ की बात करते हैं, पर यह बात कलाकार-मात्र पर लागू होती है। हमें लता मंगेशकर, आशा भोंसलें, मोहम्मद रफ़ी, मुकेश के गाने अच्छे लगते हैं; पर उन्हें उस मकाम तक पहुंचने के लिए और उसके बाद भी कितना-कितना रियाज़ करना पड़ता है, कितना आत्म-संयम बरतना पड़ता है, गले को

ठीक रखने के लिए किन-किन प्यारे लुभावने व्यंजनों के स्वाद को तिलांजलि देनी पड़ती है, उस हकीकत से सामान्य लोग नावाकिफ़ होते हैं।

एक और बहुत जरूरी बात उपन्यास के द्वारा ध्वनित हुई है। कला-क्षेत्र में सफल होने के लिए प्रतिभा, लगन और परिश्रम तो चाहिए ही; इनके अतिरिक्त धैर्य, तितिक्षा, आत्मरति का त्याग, अपने 'ईगो' को मारना जैसे गुण भी अत्यंत उपादेय सिद्ध होते हैं। प्रतिभा, लगन, मेहनत तो हर्ष के पास भी थी, पर वह न केवल 'ड्रग-एडिक्ट' हो जाता है, और एन. एस. डी. का सर्वाधिक होनहार छात्र, 'कालिगुला', ड्रग के ओवर-डोज़ के कारण कुत्ते की मौत मारा जाता है। वर्षा तो अपना 'चाँद' पा लेती है, पर हर्ष उस चाँद से वंचित रह जाता है, क्योंकि सफलता के हर रास्ते पर उसका 'सुपर ईगो' उसके सामने आता है। वर्षा एक फिल्म में अजय नामक एक हीरो के साथ काम कर रही थी।

हर्ष को इसी अजय के साथ 'साइड-रोल' मिल रहा था, किन्तु हर्ष समझता है कि अजय उसके सामने कैमरे के सामने खड़े होने लायक भी नहीं है और वह उस 'डमफोक' का साइडी कैसे बन सकता है?[81] वह भूल जाता है कि मोहमयी मायानगरी में कितने ही कौवे मोती चुग रहे हैं और हंस बेचारे भुगने दानो पर गुजारा कर रहे है। वर्षा भी अपने अभिनय के उजेले बिखेर चुकी है। परंतु शुरुआती दौर में उसे कंचनप्रभा जैसी हीरोइनों के आगे झुकना पडता है। कंचनप्रभा उसके संवादों पर भी डाका मारती है और वर्षा मन मसोसकर रह जाती है। एक स्थान वह नाटक के अभिनय के साथ उन स्थितियों की तुलना करते हुए कहती है – "क्या किसी मंचन मे एक कलाकार दूसरे की पंक्तियां छीन सकता है? इयागो की भूमिका कर रहे लांरेन्स आलिवियर आथेलो का एकालाप हड़प सकते हैं? आशा करते हुए वर्षा आइरीना की पंक्ति दबोच सकती है? सोचने से ही उबकाई आने लगती थी। पर कंचनप्रभा ने आज उसके दो संवादों पर डाका मारा था।"[82] पर कुछ मामलों में गम खा लेती है तो अपने गंतव्य तक पहुंच जाती है, बल्कि उसी कंचनप्रभा को पीछे छोड़ वह आगे निकल जाती है और 'होलीवुड' की ऊंचाइयों तक पहुंच जाती है। हर्ष की पृष्ठभूमि निश्चित रूप से वर्षा

से अच्छी थी। वह शुरू से इंग्लिश-मीडियम में बेहतरीन स्कूल में पढ़ा है। काश वह थोड़ा झुकना जानता। सिंह भी बड़ी छलांग मारने के लिए दो कदम पीछे हटता है। प्रस्तुत उपन्यास से यह बोधपाठ भी मिलता है।

'राग दरबारी' व्यंग्यात्मक-राजनीतिक उपन्यास है, बरअक्स उसके 'मुझे चाँद चाहिए' एक नाटकीय उपन्यास है, उसमें नाट्य-जगत और फिल्म-जगत की बारीकियो को बखूबी उकेरा गया है। अतः 'राग दरबारी' की भाषिक-संरचना में जहां व्यंग्यात्मक शब्दों, वाक्यों, व्यंग्योक्तियों आदि का प्रयोग मिलता है, वहां 'मुझे चाँद चाहिए' में कला-जगत से जुड़ी हुई शब्दावली हमें मिलती है। कही-कहीं भाषा में अति-नाटकीयता के तत्व भी मिल जाते हैं।

(ग) 'काशी का अस्सी' की कथ्य-चेतना :

'काशी का अस्सी' की कथ्य-चेतना को निरूपित करने से पूर्व यहां भी बहुत संक्षेप में हम प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु और चरित्र-सृष्टि पर एक दृष्टिपात करना चाहेंगे।

(1) 'काशी का अस्सी' की कथावस्तु :

'मुझे चाँद चाहिए' की कथा में एक क्रमिकता है। वह 'A to Z' चलती है, हालाकि वहां भी 'पूर्व-दीप्ति' जैसी टेकनिक को कई स्थानों पर अपनाया गया है, पर फिर भी नायिका वर्षा के जीवन के तीन पडावों के लिए तीन खण्ड उसमें स्पष्टतया दिये गये है और कथा भी उसी क्रम में आगे बढ़ती है। परंतु 'काशी का अस्सी' की कोई बधी-बधाई कथा नहीं है। कहने को पाँच कथाएं हैं पर कथाएं सब गड्डमगड्। बनारस-वाराणसी-काशी का एक 'लोकेल' है अस्सी। 'राग दरबारी' में 'शिवपालगंज' था और था वहां के लोगों का 'गंजहापन' और बांगडूपन; यहां के काशीका एक मुहल्ला 'अस्सी' अपने भदेसपन व्यंग्य-विनोद में सरोबार। यहाँ। ढेरों पात्र हैं और इन पाँच कथाओ में ही वे ही पात्र बार-बार और जगह-जगह पाए गये हैं। काशीनाथ सिंह कहानियों और संस्मरणों के चर्चित लेखक रहे हैं। बहुत पहले सन 1972 में उनका एक उपन्यास 'अपना' मोर्चा प्रकाशित हुआ था, जिसमें तत्कालीन छात्र-आंदोलनों की कथा थी। 'काशी का अस्सी' सन 2002 में

प्रकाशित उनका एक अलग किस्म का उपन्यास है। उपन्यास के प्रकाशकीय वक्तव्य में कहा गया है – "पिछले दस वर्षों से 'अस्सी' काशीनाथ की भी पहचान रहा है और बनारस की भी। जब इस उपन्यास के कुछ अंश 'कथा रिपोर्ताज' के नाम से पत्रिकाओं में छपे थे, तो पाठकों और लेखकों में हलचल-सी हुई थी, फोटास्टेट तक हुए थे, स्वयं पात्रों ने बावेला मचाए थे और मारपीट से लेकर कोर्ट-कचहरी की धमकियां तक दी थीं। अब वह मुकम्मल उपन्यास आपके सामने है जिसमें पॉच कथाएं हैं और उन सभी कथाओं का केन्द्र भी अस्सी है। हर कथा में स्थान भी वही, पात्र भी वे ही – अपने असली और वास्तविक नामों के साथ, अपनी बोली-बानी और लहजों के साथ। हर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मुद्दे पर इन पात्रों की बेमुरव्वत और लट्ठमार टिप्पणियां काशी की उस देशज और लोकपरंपरा की याद दिलाती हैं जिसके वारिस कबीर और भारतेन्दु थे।"[83]

यह ज़िन्दगी और जिन्दादिली से भरा एक उपन्यास है। वह उपन्यास के पारंपरिक ढांचे पर एक प्रश्नचिह्न लगाता है, क्या है यह, संस्मरण? रिपोर्ताज? कहानी-संग्रह? निबंध? पात्रों की तरह ये सभी काव्यरूप भी गड्डमगड्ड हो गए हैं। उसकी पाँच कथाएं इस प्रकार हैं – देख तमाशा लकड़ी का, सन्तों घर में झगरा भारी, सन्तों असन्तों और घोंघाबसन्तों का अस्सी, पांड़े कौन कुमति तोहे लागी, कौन ठगवा नगरिया लूटल हो।

उपन्यास में निरूपित काल सन 1980 के आसपास से लेकर 6 दिसम्बर 1992 में विवादास्पद ढांचे को ढहाए गए बाद तक का है।[84] बकौल काशीनाथ के " 'अस्सी' पिछले दस वर्षों से (अर्थात सन 1992 से पहले के दस वर्ष) भारतीय समाज में पक रही राजनीतिक-सांस्कृतिक खिचड़ी की पहचान के लिए चावल का एक दाना भर है।"[85]

उपन्यास के प्रारंभ में एक टिप्पणी है : "शहर बनारस के दक्खिनी छोर पर गंगा किनारे बसा ऐतिहासिक मुहल्ला अस्सी। अस्सी चौराहे पर भीड़-भाड़वाली चाय की एक दुकान। इस में रातदिन बहसों में उलझते, लड़ते-झगड़ते, गाली-गलौज करते कुछ स्वनामधन्य अखाड़िए बैठकबाज। न कभी उनकी बहसें खत्म

होती हैं, न सुबह-शाम। जिन्हें आना हों आएं, जाना हों जाएं। इसी मुहल्ले और दुकान का 'लाइव शो' है यह कृति – उपन्यास का उपन्यास और कथाएं ही कथाएं। खासी चर्चित, विवादित और बदनाम। लेकिन बदनाम सिर्फ अभिजनों में, आम जनों में नहीं। आम जन और आम पाठक ही इस उपन्यास के जन्म की जमीन रहे हैं।"[86]

सबसे पहले एक मुख्तसर – सा बायोडेटा अस्सी का : कमर में गमछा, कंधे पर लंगोट और बदन पर जनेऊ – यह 'यूनिफोर्म' है अस्सी का। कपड़े-लत्ते की दुनिया में चाहे जितना प्रदूषण आया हो पर गमछा अपनी जगह अड़िग है। 'हर हर महादेव' के साथ '.........' (एक गाली) का नारा इसका सार्वजनिक अभिवादन है। फर्क इतना ही है कि पहला बन्द जरा जोर लगाकर बोलना पड़ता है और दूसरा बिना बोले अपने आप कंठ से फूट पड़ता है। जमाने को... पर रखकर मस्ती में घूमने की मुद्रा 'आइडंटिटी' कार्ड है यहां का। "जो मजा बनारस में, न पेरिस में, न फारस में" – यह वाक्य अस्सी का 'इश्तहार' है। 'गुरु' यहां की नागरिकता का 'सरनेम' है। "न कोई सिंह, न पांडे, न जादो, न राम। सब गुरु। जो पैदा भया, वह भी गुरु, और जो मरा वह भी गुरु। वर्गहीन समाज का सबसे बड़ा जनतंत्र है अस्सी। अन्त में एक बात और। भारतीय भूगोल की एक भयानक भूल यह है कि वे लोग अस्सी को बनारस का एक मुहल्ला मानते है, पर दर हकीकत अस्सी 'अष्टाध्यायी' है और बनारस उसका भाष्य। पिछले तीस-पैतीस वर्षों से 'पूंजीवाद' के पगलाए अमरीकी यहां आते हैं और चाहते हैं कि दुनिया इसकी 'टीका' हो जाए... मगर चाहने से क्या होता है? अगर चाहने से होता है तो पिछले खाड़ी युद्ध के दिनों से अस्सी चाहता था कि अमरीका का 'व्हाइट हाउस' इस मुहल्ले का 'सुलभ शौचालय' हो जाए, ताकि उसे 'दिव्य निपटान' के लिए 'बहरी अलंग' अर्थात गंगा पार न जाना पड़े... मगर चाहने से क्या होता है। दूसरी एक महत्वपूर्ण बात और, यह संस्मरण या उपन्यास या जो कहो, वह वयस्कों के लिए है, बच्चों और बूढ़ों के लिए नहीं; और उनके लिए भी नहीं जो यह नहीं जानते कि अस्सी और भाषा के बीच ननद-भौजाई और साली-बहनोई का रिश्ता है। जो भाषा

में गन्दगी, गाली, अश्लिलता और न जाने क्या-क्या देखते हैं और जिन्हें हमारे मुहल्ले के भाषाविद 'परम' (चुतिया का पर्याय) कहते हैं वे भी कृपया इसे न पढ़ें, क्योंकि पढ़कर उनका जी ही दुखेगा।[87]

अस्सी पर पहले प्रवासियों की एक ही नस्ल थी। -- लेखको और कवियों की। केदार चायवाले की दुकान 'कवि-पालन-केन्द्र' थी। साठ शुरू होते-होते कवि फुर्र हो गये। पैसठ के आसपास धूमिल के कारण उसमें कुछ जान आयी। धूमिल काव्य द्रोहियों के लिए परशुराम था और उसकी जीभ फरसा। पर धूमिल के जाने के साथ ही फिर विराना छा गया। अस्सी मे अस्सी पर आरा, सासाराम, भोजपुर, छपरा, बलिया, गाजीपुर, आजमगढ़, जौनपुर, गोरखपुर, देवरिया जाने कहां-कहां से युवा लड़के युनिवर्सिटी में पढ़ने आये। इनमें कई नस्लें थीं – एक थी 'फाइन आर्ट्स' वालों की, दूसरी तुलसीघाट पर 'ध्रुपद मेला' वालों की, तीसरी पत्रकारों की और चौथी उन गोवर्द्धनधारियों की जो कानी उँगली पर 'राष्ट्र' उठाए किसी चेले के 'हीरो-होण्डा' पर दस बारह साल से मुस्की मार रहे थे। जब इनकी फोजों ने अस्सी पर धावा मारा तो पप्पू वल्द बलदेव ने आत्मरक्षा मे भाँग की गोलियां दागना शुरू कीं। अस्सी पर पप्पू चायवाले की दुकान के मोडेल पर 'श्रीराम सेण्टर' की कल्पना हुई थी।88 संस्कृति और परंपरा के रक्षक इस मुहल्ला के डीह हैं डॉ. गया सिंह।

भाँग बेचनेवालो पर दारोगा शर्मा ने जब शिकंजा कसा तो डॉ. गया सिह ने उसको वहां से भगाया था। ऐसे ही 'भारतीय संस्कृति' के भाजपाई चरवाहों ने जब होली के 'कवि सम्मेलन' को रोकना चाहा तब डॉ. गया सिह ने प्रसाद की 'गुण्डा' कहानी को सार्थक कर दिखाया था। शुरू में ही कह दिया गया है कि उपन्यास की कोई बंधी-बंधायी कथा नहीं हैं। जितने पात्र है, उतनी कथाएं हैं। राजनीतिक – साहित्यिक बहसें, कविताएं, कवि-सम्मेलन, भाँग छानना और पीना, दिव्य निबटान के लिए बाहरी अलंग जाना, मंडल-कमंडल-खरमंडल की चर्चाएं, देवीलाल का जाना, वी. पी. सिंह का आना, मडल के बाद उसी 'विपिया' को गरियाना, 'अबकी बारी अटलबिहारी' का नारा; तन्नी गुरु, गिरिजेश राय

(भाकपा), नारायण मिश्र (भाजपा), अंबिकासिंह (कभी कांग्रेश कभी जद), डॉ. गया सिंह, रायसाहब, रामवचन पांडे, हरिद्वार पांडे (भाषण कला के बैजू बावरा), अवधेश राय, श्यामलाल यादव, जवाहर जायसवाल, ट्रिपुलसिंह, सरोज यादव, श्रीनिवासन, उदय पांडे, जग्गू मल्लाह, बारबर बाबा, कैथरीन शर्मा जैसे सैंकड़ों पात्र और उनसे जुडी हुई कहानियां 'कासी का अस्सी' में मिलती हैं। बहुत-सी अवांतर कथाएं हैं जिनमें बारबर बाबा की कहानी, पंचतंत्र की कहानी, तन्नी गुरु की कहानी, काशीनाथ से जुड़े प्रसंग, चौथेराम यादव की कहानी जैसी कथाएं मिलती हैं।

इनकी कथाओं के साथ राजनीति भी चलती रहती है। अस्सी से अट्ठानबे तक की राजनीति। किस तरह बाबरी मस्जीद को ढहाया जाता है, किस तरह वर्गहीन समाज वाला अस्सी हिन्दू और मुसलमान, बाभन और बनियों में, यादवों और चमारों में बंट रहा था, किस तरह अमरीका सबकुछ चट कर रहा था, किस तरह अस्सी की खुशियों पर ग्रहण लग रहा था, बनारस और अस्सी में अंगरेज-अंगरेजिनें कैसे बढ़ रही थी और उसके कारण क्या थे, जमींदारी जाने के साथ जजमानी की हालत कैसे पतली हो रही थी, कैसे छोटी जाति के लोगों के साथ इन विदेशियों का मेल बढ़ रहा था, कैसे बारबर बाबा का योगाश्रम फलफूल रहा था, कैसे और किस तरह भॉग की जगह हेरोइन और ब्राउन-सुगर ले रहा था; घाटों पर वियाग्रा, पेनाग्रा, नियाग्रा और किन-किन चीजो के पावडर बिक रहे थे; कैसे पेंशन की रकम रोटी-दाल मे नहीं पुष्टई में जा रही है। मस्त-कलंदर रहने वाला यह शहर कैसे मस्ती से ही उजड़ रहा है।

यह जो बदलाव आया है, उसके दो परिदृश्य 'काशी का अस्सी' के द्वितीय फ्लेप के पृष्ठ-भाग पर अंकित है। यथा –

"हंसी धीरे-धीरे खत्म हो रही है दुनिया से। पश्चिम के लिए इसका अर्थ रह गया है – कसरत, खेल। क्लब, टीम, एसोसिएशन, ग्रुप बनाकर निरर्थक, निरुद्देश्य, जबर्दस्ती जोर-जोर से 'हो-हो-हा-हा' करना। इसे हंसी नहीं कहते। हंसी का मतलब है जिन्दादिली और मस्ती का विस्फोट, जिन्दगी की खनक। वह तन

की नहीं, मन की चीज है। यह किसी भी सनसनीखेज खबर से कम नहीं कि जम्बूद्वीप में एक ऐसी जगह है जहां हंसी बची रह गई है।"[89]

और—

"वे देख रहे थे कि चीजें बदल रही है और बदलाव बाहर नहीं, उन्हीं के घर में हो रहा है – इसके होने, न होने पर उनका कोई वश नहीं है, उनके न चाहते हुए भी होता जा रहा है। वे देख रहे थे कि अस्सी भीतर से ही एक नया नगर उग रहा है – धीरे-धीरे उग रहा है और वह दिन दूर नहीं जब वही नहीं, सारे गुरु अपना-अपना अस्सी संभाले हाशिये पर चले जाएंगे – वहां, जहां नगर के कुड़े-कचरे का ढेर है।"[90]

ऊपर का कथन तो तन्नी गुरु का है, पर यह वेदना पूरे भारत के सर्वहारा वर्ग की है। भूमंडलीकरण, बाजारीकरण, उधारी करण ने हमको कहां ला पटका है। गरीबों के पास पहले भी कुछ नहीं था। बस थी तो उनकी मस्ती, उनकी बेलौस हंसी, खनखनाती हंसी पर उसे भी देश के पूंजीपतियों और हरामियों ने नजर लगा दी। उपन्यास की कथा कुछ भी हो। लेखक की चिन्ता और सरोकार यह है कि – 'कौन ठगवा नगरिया लूटल हो'।

(2) 'काशी का अस्सी' की चरित्र-सृष्टि :

'काशी का अस्सी' का रूपबध मेरे नम्र अभिमत के अनुसार 'आचलिक' प्रकार का है। जिस प्रकार 'मैला ऑचल' का नायक मेरी-गंज गाव है, ठीक उसी प्रकार 'काशी का अस्सी' का नायक काशी का 'अस्सी' लोकेल है। 'मैला आँचल' में भी सैंकड़ों पात्र हैं, यहां भी है, जिनमें से कुछेक का उल्लेख ऊपर हम कर चुके हैं। यहां कुछेक पात्रों का बहुत ही संक्षेप में 'कैरीकेचर' रखने का हमारा प्रयत्न रहेगा।

सबसे पहले लेते हैं लेखक महोदय काशीनाथ को। काशीनाथ-सिंह उनकी अपनी जबानी – "इधर सुनते हैं कि कोई बुढ़ऊ-बुढ़ऊ से हैं काशिनाथ – इनभर्सीटी के मास्टर जो कहानियां-कहानियां लिखते हैं और अपने दो-चार बकलोल दोस्तों के साथ 'मारवाड़ी सेवा संघ' के चौतरे पर 'राजेश ब्रधर्स' में बैठे

रहते हैं। अकसर शाम को। 'ए भाई। ऊ तुमको किधर से लेखक – कवी बुझाला है जी? बकरा जइसा दाढ़ी-दाढ़ा बढ़ाने से कोई लेखक-कवी थोड़े नु बुनता है? देखा नहीं था दिनकरवा को? अरे, ऊहे रामधारी सिंघवा? जब चदरा-ओदरा कन्हियां पर तान के खडा हो जाता था – छह फूटा ज्वान; तब भह-भह बरता रहता था आउर ई ...सड़ी के अखबार पर लाई-दाना फइलाय के, पुड़िया नून और एक पाव मिरचा बटोर के भकोसता रहता है। कवी-लेखक अइसै होता है का?... सच्ची कहें तो नमवर-धूमिल के बाद अस्सी का साहित्य-फाहित्य गया एल. के. डी. (लौड़ा के दक्खिन)।"[91]

दूसरे हैं अस्सी मुहल्ले के 'डीह' माने जाने वाले डॉ. गया सिंह। हरिश्चन्द्र महाविद्यालय के अध्यापक डॉ. गया सिंह ने 'विद्वान' कहलाने के लिए अथक संघर्ष किया है। एक ओर विद्वानों की संगत, दूसरी ओर ऐसे लोगों से मारमीट जो उन्हें गुण्डा, लंठ, झगड़ालू, मुकदमेबाज और जाने क्या-क्या कहते थे। अपने को 'विद्वान' साबित करने के लिए उन्होंने कई लोगों से कई मुकदमें भी लड़े। अनाड़ी लोग उन्हें कानपुर के 'धरतीपकड़' घोड़ावाले की टक्कर का व्यक्तित्व मनाते हैं। ये चुनाव तो नहीं लड़े लेकिन हिन्दू विश्वविद्यालय के एक विभाग में निकलनेवाला ऐसा कोई पद नहीं जिसके लिए इंटरव्यू न दिया हो। अगर ये छटे तो अपनी विद्वता के आतक और दबदबे के कारण। मूर्खता के कारण दूसरे छटे होंगे। ... उनके कई अमर वाक्य है जिन्हे लोग अकसर 'कोट' करते रहते हैं, जैसे -- "मैने शिवप्रसादसिंह रूपी पौधे को उगाया और सींचकर बडा किया तो त्रिभुवनसिह ने उखाड़कर अपने गमले में लगा लिया।" "मैने शिवप्रसाद को कंडालन चाय, खंचियन रसगुल्ला, झौउअन पान और टनन समोसा खिलाया है।" और "जब सौ रचनाकार मरते हैं तब एक आलोचक पैदा होता है।" एक बार वे दारोगा शर्मा की बोलती बन्द कर देते हैं जब बिना लाइसेंस भाँग बेचने वालों पर चलान करता है। यथा – "शर्माजी देख रहे हो मेरा सिर? खल्वाट? खोपड़ी पर एक भी बाल नहीं। तुम्हारे डंडे का वार इस पर भरपूर पड़ेगा। मारो, मार सको तो। लेकिन शर्मा ...सड़ि के! तुम काशी की संस्कृति और परंपरा मिटाना चाहते हो? तुम्हारी

हैसियत कि तुम हजारों-हजार साल से चली आ रही काशी की संस्कृति और परंपरा मिटा दो?"[92] और दारोगा अपना-सा मुंह लेकर वहां से चलता बना था। ऐसे ही एक बार 'भारतीय संस्कृति' के भाजपाई चरवाहों ने होली पर होने वाले कवि-सम्मेलन पर अश्लीलता का आरोप लगाकर बन्द करवाना चाहा था। तब भी डॉ. गयासिह टाल ठोक्कर सामने आ गये थे और उनकी बोलती बन्द कर दी थी। अस्सी के रत्नों में उनका भी शुमार है।

अस्सी के तीसरे रत्न रामजी राय हैं। बकौल लेखक के अशोक पांडे नेता हैं, जन-प्रतिनिधि नहीं! जन-प्रतिनिधि तो अस्सी पर एक ही शख्स हैं -- रामजी राय; जो बच्चन की बेंच पर बैठकर सारा तमाशा देखते रहते हैं और फिर जब अपना मुंह खोलते हैं तो गालियों की बौछार शुरू हो जाती है। लेखक के शब्दों में – "रामजी राय को कई चीजों से परहेज है – खड़ी बोली से, फूलमाला और माईक से, मंच और लाउडस्पीकर से : उन्हें भोजपुरी गालियो का माइक टायसन कहा जाता है। यह भी कहते हैं कि नगरसेठ ने कभी अखबारों के जरिए यह ऐलान करवाया था कि जो कोई रामजी राय से एक भी ऐसा वाक्य बुलवा दे जिसमें गाली न हो, उसे सवा लाख रूपए का इनाम!... और आज भी वह इनाम अपनी जगह है!... जब अस्सी के सभी नेता वी.पी. को गच्चा दे गए थे, अकेले राय साहब थे जो 'रजवा' की डूबती नैया का डाडा संभाले हुए थे। उनका कहना था कि अगर चन्द्रशेखर पी.एम. हुए तो 'बाटी-चोखा' राष्ट्रीय भोजन, 'खो-खो' राष्ट्रीय खेल', 'सुरहा ताल' राष्ट्रीय कार्यालय और '...सड़ी' पी.एम. आफिस होगा।"[93]

अस्सी के चौथे रतन हैं : ट्रिपुलसिंह । ट्रिपुलसिंह माने शिव-शंकर सिह यानी तीन 'एस'। उन्हें ट्रिपुलसिंह कि उपाधि किस ने दी यह शोध का विषय है! उनके बारे में लेखक की टिप्पणी है : "पतले, लम्बे, किसान सरीखे कुर्ता-धोतीवाले पचास साला, ट्रिपुल की पढ़ाई-लिखाई, गांव, गिरांव, नौकरी-चाकरी और खेती-बारी के बारे में कोई नहीं जानता। वे महीनों या कभी-कभी सालों गायब रहते हैं और एक दिन अचानक गले में माला पहने, बेंच पर खड़े भाषण देते हुए प्रगट हो जाते हैं। यह तब होता है जब देश किसी गहरे संकट में हो – छात्र-संघ या

नगरपालिका या विधानसभा का चुनाव हो, नगर में हड़ताल हो, आंदोलन हो, दंगा हो, अस्सी-लंका पर खून-कतल हो... वे अचानक गायब होते हैं और अचानक प्रगट होते हैं उनके बारे में मशहूर है कि वे जिसका खाते हैं उसका गाते हैं और जब किसीका नहीं खाते तो सबको गरियाते हैं। जब भी लोग मजा लेना चाहते थे, उनके गले में एक माला डाल देते हैं, जब नही 'डालते और उनका भाषण करने का मन करता हैं। तो खुद ही ढूंढते-ढूंढते किसी मंदिर में चले जाते हैं। आप सिर पटककर मर जाइए, बिना माला के भाषण नहीं करवा सकते।"[94]

और यह रहा उनके भाषण का एक नमूना : "इश्टूडंटो! हम-तुम नहीं जानते, लेकिन दिल्लीवाले जानते हैं कि अख़बार कितनी गुणकारी चीज है? वे सबेरे-सबेरे इसे लेकर पाखाने में घुस जाते हैं। कमोड़ देखा है न, रेलगाड़ी में जिस पर बैठकर झाड़ा फिरते हैं? तो उसी पर अपने घर में बैठ जाते हैं और अख़बार ऐसा खोलकर पढ़ते हैं (हाथ फैलाकर अख़बार पढ़ने का अभिनय करते हुए) गोली, बन्दूक, बलात्कार, ठगी, जालसाली, जहर, हत्या, मर्डर, बम-विस्फोट, और इधर देखो, पेट साफ। ऐसा खुलासा होता है कि चित्त चैतन्य महाप्रभु। ... लोग समझते हैं कि समय की कमी के कारण ऐसा करते हैं। सबेरे-सबेरे बस पकड़नी होती है, इसलिए ऐसा करते है। लेकिन नही, यह उनका 'लेक्सेटिव' है, सोंधी हुई हर्रे है' और ससुर तुम लोग कहोगे कि ऐं, विद्या माई की ऐसी बेकदरी? ...इश्टूडटो! यदि मारकाट न हो, लूटपाट न हो, खून-खराबा न हो, अगर अख़बार न छपे और छपे तो उसमें यह सब न हो तो..."[95]

कई साल पहले लंका पर टंडनजी की चाय की दुकान हुआ करती थी। तब दुकान लंका की राजधानी थी। -- युनिवर्सिटी के बच्चा-नेताओं का 'किडी कान्वेंट'। चाय पिलाने वाले टंडनजी के पास सैंकड़ों किस्से थे लोहिया, जोर्ज, राजनारायण, प्रभुनारायण, बहुगुणा के। वे स्थायी विपक्ष थे। विपक्ष कई बार सत्ता में भी आया, लेकिन वे हमेशा विपक्ष में ही रहे। आज तो न राजनीति है, न नेतागिरी, लेकिन जब थी तब वहां बच्चा नेताओं की ट्रेनिंग होती थी। कैसे सुबह होते-होते युनिवर्सिटी अनिश्चित काल के लिए बन्द कराई जाती है? कैसे बिना

डंडा खाए जेल जाया जाता है? कैसे खुद को सुरक्षित रखते हुए आम छात्रों के हाथ-पैर तुड़वाए जाते हैं? कैसे छात्र-संघ के चुनाव में सहानुभूति बटोरने के साथ हवा बनाई जाती है? टंडनजी इतिहास हैं इन सबके।[96]

एक अस्सी कुलभूषण हैं – लाढ़ेराम शर्मा। 'लाढ़ेराम' पंडों के बीच का एक कूट-शब्द है। इसका अर्थ है – टका, रूपया, पैसा। पंडों में इसका प्रयोग इस तरह होता है – 'का गुरु, आज सवेरे से लाढ़ेराम का मुंह नहीं देखा। वैसे लाढेराम शर्मा मूल नाम तो नाकेराम शर्मा था। नाई का धंधा था। पहले अस्सी चौराहे पर उनकी दुकान थी। बाद में वे अस्सी घाट पहुंच गए। उसी घाट पर जगन्नाथ मल्लाह भी था जो इक्के-दुक्के विदेशियों को अस्सी से राजघाट तक की सैर कराता था। तब नक्का भी साथ हो लेता था। कैथेरीन से लोढ़ेराम की मुलाकात यहीं हुई थी। कैथरीन एक पतली, सुंदर, भरी-पूरी अमरीकी युवती थी। दस साल छोटे पर सुगठित काठीवाले लोढ़ेराम और कैथरीन में प्रेम का अंखुआ कब फूटा किसीको पता नहीं चला। कैथरीन की दो समस्याएं थीं – वीसा और आवास की। लोढ़ेराम युनिवर्सिटी के हिन्दी डिप्लोमा पढ़ाने वाले एक प्रोफेसर की दाढ़ी बनाने उनके घर जाता था। कैथरीन को डिप्लोमा में एडमिशन मिल गया और इस तरह उसे 'स्टूडेंट वीसा' मिल गया। आवास की समस्या जगन्नाथ ने हल कर दी। लोढ़ेराम कमपढ़ जरूर था। पर दुनिया देखी थी। 'ग्लोबलाइजेशन', 'लिबरलाइजेशन', 'मल्टीनेशनलाइजेशन' जैसे ढेर सारे 'आइजेशनों' को विद्वानों ने अपने ढ़ंग से समझा होगा, लोढ़ेराम ने अपने ढंग से समझा। कैथरीन ने हिन्दी और 'इंडियन फिलोसोफी' सीखी और लोढ़ेराम ने अंगरेज-अंगरेजिनों की भाषा। फिर कुछ साल के लिए लोढ़ेराम कैथरीन के साथ उडनछू हो गये और आये 'बारबर बाबा' बनकर – प्रसिद्ध योगिराज और जगतप्रसिद्ध तान्त्रिक। गंगा पार सात एकड़ फार्म में उनका 'योगाश्रम' बन गया। बाबा विदेशियों में कितने पापुलर हो गए थे – उसका प्रमाण तो यह था कि जो भी अंगरेज स्टेशन पर उतरता, योगाश्रम का ही पता पूछता। बाबा के बारे में तरह-तरह की कहानियां अस्सीवासियों में प्रसिद्ध है। उनमें से एक कहानी यह भी है –

"अमेरिका में मियामी बीच पर एक भव्य समारोह आयोजित हुआ था बाबा के सम्मान में। लाखों की भीड़ थी। अगली पांतों में होलीवुड के सभी प्रसिद्ध सितारे और सितारिनें! बाबा की योगसाधना का 'डैमो' था उसे रात! मंच पर एक क्विंटल इक्कीस किलो अष्टधातु का ग्लोब रखा गया था। राष्ट्रपति क्लिंटन की पत्नी हिलेरी ने उद्घाटन किया। बाबा ने योगसाधना के बल पर तालियों की गड़गड़ाहट के बीच अपने हथियार (लिंग) से ग्लोब को उठाया और मंच से नीचे बालू पर फेंक दिया। वह ग्लोब आज भी 'व्हाइट हाउस' में रखा हुआ है। और यह योगाश्रम उसी इनाम की रकम से बना है।"[97]

और भी कई हैं। एक-से-बढ़कर एक नंग, नमूने और रत्न। 'राग-दरबारी' के राधेलाल 'काना' की तरह तन्नीगुरू हैं जो न चुकनेवाले मरद हैं और कन्नी गुरु, मुतफन्नी गुरु, पन्नि गुरु, अठन्नी गुरु ऐसे कई-कई गुरुओं के चेहरे तन्नी गुरु जैसे हैं तो बेचारे तन्नी गुरु क्या करे?[98] एक चौथेराम यादव है। युनिवर्सिटी के हिन्दी विभाग में अध्यक्ष व प्रोफेसर। मुलायम सिंह यादव उन्हें लखनऊ बुला रहे हैं, लालुप्रसाद यादव उन्हें पटना, युनिवर्सिटी के वाइस-चांसलर का आफर दे रहे हैं, पर चौथेराम हैं कि टस से मस नहीं होते। वह कहते हैं कि पहले वहां 'अस्सी' ला दो, तब आएंगा। पप्पू की दुकान पहुचाइए।[99]

(3) 'काशी का अस्सी' की कथ्य चेतना : 'काशी का अस्सी' उपन्यास पर उसकी गाली-गलोज वाली भाषा के कारण अश्लीलता का आरोप लगाया गया है। जो इस उपन्यास की अन्तर्मुखी चेतना, उसमें छिपे दर्द की करारी कराह को पहचानने मे सक्षम नहीं है, या किन्हीं पूर्वाग्रहों के चलते सक्षम नहीं होना चाहते, ऐसे 'गिरोहपंथी' आलोचक ही इस प्रकार की बात कर सकते हैं। 'आधा गांव' उपन्यास को लेकर भी कुछ लोगों ने बावेला मचाया था। वस्तुतः 'अश्लीलता' के हार्द को न समझने के कारण ही इस प्रकार की असाहित्यिक चर्चाएं तुल पकड़ती हैं। अश्लीलता क्या है? खंडित सत्य अश्लीलता है।100 किसी सत्य को उसकी पूर्णता या समग्रता में न लेना ही 'खंडित सत्य' कहलाता है। किसी बात को उसके संदर्भ से विच्छिन्न कर देना ही अश्लीलता है। बिना संदर्भ के अच्छी-से-अच्छी

बात भी अश्लील-सी लगने लगती है। यहां शब्दों पर ध्यान दीजिए – 'लगने लगती है' – अर्थात् वस्तुतः होती नहीं है। इरविंग वालेके के उपन्यास 'सेवन मिनिट्स' में एक साहित्यिक कृति पर – 'ओबसीनिटी' का आरोप लगने का एक मुकदमा दायर होता है, तब बचाव पक्ष का एडवोकेट कुछेक शब्दों, शब्द-समूहों तथा 'इडियम्स' को लोगों के सामने रखता है और उनमें 'ओबसीनिटी' किस में है यह बताने के लिए कहता है। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता, जब उन्हें ज्ञात होता है कि जिसे उन्होंने 'ओबसीन' बताया था, वे सारे के सारे शब्द और शब्द-समूह आदि 'होली बुक' बाईबल से लिए गए थे![101] अभिप्राय यह कि भाषा को, शब्दों को, उनके संदर्भ के साथ देखना होता है, लेखक के अभिप्राय के साथ देखना होता है। यहां संदर्भ बनारस का है, और बनारस में भी उसके अस्सी लोकेल को लिया गया है जहां के लोग बिना गाली के एक वाक्य नहीं बोल सकते। उपन्यास में रामजीराय के संदर्भ में कहा गया है कि नगरसेठ ने उनके ऊपर सवा लाख का इनाम रखा है कि कोई यदि उनके मुंह से एक वाक्य निकलवा दे जो बिना गाली का हो, पर आज भी वह इनाम अपनी जगह कायम है।[102] जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के उपन्यास 'मुर्दाघर' में मुंबई की झोंपडपट्टी के परिवेश को लिया गया है जिसमें झोंपडपट्टी के बासिन्दों की भाषा मिलती है। काशी और मथुरा के लोग बात-बात में गाली बोलते है। हम जिन्हें गाली समझते है उनको वे गाली समझते ही नहीं है। उनके लिए तो वे रोजमर्रा के शब्द हैं। गुजरात में सुरत और सुरत के आसपास के लोग जो 'हुरती' (सुरती) बोली में बातचीत करते हैं, वे भी बिना गाली के कोई बात नहीं करते। एक कहावत-सी प्रचलित है – "हुरती भायडो उठे तो मोमां गाळ अने गळ्फो बेऊ हाथे नेहरे" – अर्थात जब सुरत का कोई पुरूष प्रातः उठता है तो उसके मुख से गाली और बलगम साथ में निकलते हैं। अब यदि सुरत के परिवेश पर कोई उपन्यास लिखा जाए तो वह गाली विहीन कैसे होगा? और होगा तो कैसा होगा? क्योंकि यह तो उपन्यास की बुनियादी विभावनाओं में आता है कि वह अपने परिवेश की भाषा को लेकर चलता है। उसे ही राल्फ फोक्स ने **'Prose of man's life'** कहा है।[103]

अभिप्राय यह कि यहां लेखक का आश्य देखना चाहिए, उसका उद्देश्य देखना चाहिए। उपन्यास का केन्द्रवर्ती स्वर या सूर दर्द है, पीड़ा है, चिन्ता है और यह दर्द, पीड़ा या चिन्ता लेखक की अपने लिए नहीं है, देश और समाज के लिए हैं। मुझे एक दोहा याद आ रहा है –

"आज़ादी के बाद यह, कैसा फैला रोग।
गायब होते जा रहे, भोले भाले लोग॥"[104]

'राग दरबारी' के लेखक की भी यही चिन्ता थी कि वह गाव, वह देश, वह समाज कहां गया? कभी विश्वास नहीं होता कि ये लोग कभी साथ मिलकर अपने वैयक्तिक स्वार्थों से ऊपर उठकर इस देश की आज़ादी के लिए लड़े थे, लाठियां खायी थीं, जेल गए थे। सच ही –

"लड़ते लड़ते मर गया, सैंतालीस में देश।
गीदड़ गीध चबा रहे, बदल कबीरा भेश॥"[105]

यहां नोबेल-विजेता ऐली वीज़ेल को हम पुनः उद्धृत करना चाहेंगे – "There may be times when we are powerless to prevent injustice, but there must never be a time when we fail to protest."[106] अर्थात ऐसा समय आ सकता है कि अन्याय के विरूद्ध लड़ने के लिए हमारे पास सत्ता न हो, पर ऐसा समय तो कभी नही आयेगा कि उसके खिलाफ विरोध भी नही कर सकते। लेखक, डॉ. काशीनाथ सिह ने यही किया है।

'अस्सी' तो एक प्रतीक है। लोगों की हंसी, वह सच्ची खिलखिलाती, खनखनाती हंसी, बनावटी 'लाफ्टर क्लब' वाली नहीं, उनका खिलंडरापन, उनकी मौज-मजा ये सब खत्म हो रहा है। अस्सी से ही नहीं, पूरी काशी से, पूरे पूर्वांचल से, पूरे देश और समाज से। लेखक को इसका दुःख है। कृति में यही दर्द कराह रहा है।

लेखक को इसका दुःख है कि हमारी गंगा-जमुनी संस्कृति विलुप्त हो रही है। बाह्यतः वर्ग होते हुए भी, हमारी मिट्टी में वर्गविहीनता के बीज थे। तीज-त्यौहारों में हम सब एक थे। पर अब भेद गहरा रहा है। तलवारें ही नहीं, दिलों के बीच

दीवारें भी तन रही है। 'दीवारें गिर नहीं रही हैं, दीवारें टूट रही हैं, विश्वास की दीवारें, भाईचारे की दिवारें, सौहार्द और मुहब्बत की दीवारें टूट रही है। छः दिसम्बर की अयोध्यावाली घटना के बाद की स्थिति का वर्णन एक पात्र के मुंह से सुनिए –

"जो मुसलमान नही थे या कम थे या जिन्हें अपने मुसलमान होने का बोध नहीं था, वे मुसलमान हो गए रातोंरात। रातोंरात चन्दा करके सारी मस्जिदो का जीर्णोद्धार शुरू कर दिया। देश की सारी मस्जिदों पर लाउडस्पीकर लग गया। जिस मस्जिद में कभी नमाज़ नहीं पढ़ी जाती थी, उससे भोर और रात में अजान सुनाई पड़ने लगी। जो नमाज में नियमित नहीं थे, वे नियमित हो गए!... और सुनियेगा? गाजीपुर, दिलदार नगर, बक्सर भभुआ, आजमगढ़ – अरे, आप तो उधर के ही हैं, सब जानते हैं – इस पूरे इलाके में हिन्दू से मुसलमान हुए लोगों की कितनी बड़ी तादाद है? वे यह भी जानते हैं कि हम एक ही घराने और परिवार के रहे हैं। वे एक जमाने से ठाकुरों-भूमिहारों के यहां बिना किसी भेदभाव के आते-जाते थे। न्योता-हंकारी, तीज-त्यौहार साथ मनाते थे। एक ही खटिया-मचिया थी, जिस पर बैठा करते थे। कभी फर्क ही नहीं मालूम पड़ता था दोनों के बीच। लेकिन चीजें बदल गयीं उस घटना के बाद! राधेश्याम पड़वा! है कोई इसका जवाब तुम्हारे पास?"[107]

एक और खुलासा इस उपन्यास में हुआ है कि बाबरी-घटना के बाद 'गेटोइज्म' बढ़ गया है। गेटाइज्म याने एक जाति या कौम के लोगों का एक एरिया मे बसना। बाभनों का मक्का कहा जाने वाला मुहल्ला और उसमें एक अकेले नईम की दुकान खूब चकाचक चलती थी। पचास साल पहले भीड़ लगी रहती थी दिनभर। नईम के बाप बाबू मियां बैठते थे दुकान पर। उसके चार बेटे। चारों दुकान में बराबर व्यस्त रहते थे। चकाचक था सब, चारों के हंसते चेहरे और अस्सी शैली में हंसी मजाक्। लेकिन इन पन्द्रह-बीस वर्षों में बहुत कुछ बदल गया है। "ग्राहक हिन्दू होने लगे इस बीच, आलू, भिंडी, करेला, टमाटर, कोंहड़ा (मुहल्ले की सबसे प्यारी सब्जी : पूड़ी-प्रेम के कारण); कददू, गोभी मुसलमान हो गये। घाटे पर घाटे।

रिश्ते में खटास आई। भाई सलीम-अलीम छोड़ चले नईम को। वे चले गए। अलईपुर या जैतपुरा। अपने लोगों के बीच।"[108]

इस गेटोइज्म के दुष्परिणाम अब सामने आ रहे है। बड़ी मुश्किल से जो हिन्दुस्तान एक हो रहा था, फिर बिखरने के कगार पर खड़ा है। मैं बड़ौदा की हूं। बडौदा को 'संस्कारी-नगरी' कहा जाता है। '' श्रीमंत महाराजा सयाजीराव गायकवाड (तृतीय) के कारण। उनके दरबार के संगीत-सम्राट थे फैयाज़खान। सन् 2002 के गुजरात-दंगों में उनकी मज़ार को नुकसान पहुंचाने की चेष्टाएं हुई थीं और यह सब हो रहा है धर्म, संस्कृति और राष्ट्र के नाम पर।

अस्सी की, और साथ ही देश की हंसी की खनक विलुप्त हो रही है, उसका दर्द तो है ही लेखक को, एक दूसरी भी चिन्ता उसे खाए जा रहीहै। वह पश्चिमी संस्कृति नहीं, पश्चिमी विकृति का जो हल्ला है, उसकी चिन्ता है। इसका खुलासा भी यहां हुआ है 'बारबर बाबा' वाले प्रसंग में। नाकेराम शर्मा उर्फ लोढ़ेराम शर्मा को यह समझने में देर नहीं लगती कि ये 'इंडियन कल्चर', 'इंडियन म्यूज़िक', इंडियन स्कल्पचर', 'इंडियन देवी-देवता', 'योग', 'तंत्र-मंत्र' ये सब इनके (अंगरेज-अंगरेजिनों के) शौक भी हो सकते थे और मजबूरी भी। वे ज्यादातर अपने मनीआर्डर का इन्तज़ार करते थे : बेकारी भत्ते के रूप में मिलने वाले एक हजार डालर का। अस्सी पर एक आदमी के लिए सौ डालर भी कम नही थे महीने मे। चाहे जैसे रह लो, चाहे जहा खा लो, चाहे जहा सो लो। यहां हजार डालर माने अमीर, लेकिन उनके यहां? क्या इतने मे सम्मान के साथ जीना सभव है वहा? सो टिड्डी-दल की तरह उतर आते हैं ये लोग। लोढ़ेराम सही पहचानता है कि "ये अपने घर और देश और समाज में उसी तरह कचड़ा है जैसे अपने समाज में हम!"[109] और उनके द्वारा गांजा, चरस, हेराइन, स्मैक आदि तथा वियाग्रा आदि का जो प्रचार-प्रसार हो रहा है, यह देश के युवाधन को गुमराह कर रहा है। यह खतरा बहुत भारी खतरा है।

भूमंडलीकरण, उदारीकरण (या उधारीकरण?) और बाजारवाद का हल्ला भी बहुत बड़ा खतरा है। 'पीली छतरी वाली लड़की' (उदयप्रकाश) की भांति इस

उपन्यास में भी इनके दुष्परिणामों को संकेतित किया गया है। यथा – "मना करने के बावजूद उनमें से (गुरूओं में से) हर एक के घर में टी.वी. दाखिल हो चुका था और वह भी चोर दरवाजे से। किसीके घर कर्ज के रास्ते, किसीके घर किस्त के रास्ते, किसीके घर गहनों के रास्ते, किसीके घर पेट के रास्ते। उन्हें कोई मतलब हो या न हो, इज्जत का सवाल था; घर की औरतें और बच्चे कब तक पडोस में फिल्म और सीरियल देखते। अब तो घर में ही पर्दे पर हंसी हो रही है, कहकहे लग रहे हैं और परिवार एकटक आंखें फाड़े ताक रहा है।... जो बीबी से करे प्यार, वह प्रेस्टिज से कैसे करे इन्कार?... सर्फ खरीदने मे ही समझदारी है... यह कौन-सा साबुन ले आए? यह भी कोई लगाता है आजकल? बद्री सब की दुकान पर दोनों साबुन देखे थे... हेमामालिनीवाला भी और रेखावाला भी। जाओ, इसे वापस कर आओ।... उन्होंने कभी नहीं जाना, न जानने की इच्छा की, न जरूरत समझी जानने की कि पड़ोस में या बाहर कौन कैसे रहता है? क्या खाता-पीता है? क्या पहनता है, कैसा बँगला है, कैसी गाड़ी है, है भी कि नहीं – और ये लौंडे? जिन्हें ठीक से गांड धोने का सहूर नहीं, वे अपने और दूसरों की हैसियत देखने लगे हैं।"[110] यहां 'उन्होंने' से मतलब तन्नी गुरु से था। कौन ठगवा नगरिया लूटल हो 'वाला समूचा अध्याय लगभग एब्सर्ड शैली में लिखा गया है। किस तरह अमरीका सब देशों पर अपनी जमादारगिरी दिखा रहा है और किस तरह देश से हंसी गायब हो रही है, मस्ती गायब हो रही है, भाईचारा गायब हो रहा है और किस तरह हम फिर उन अंधेरी गुहाओं में जा रहे हैं, इन सबका लेखा-जोखा है यह उपन्यास – 'काशी का अस्सी'।

निष्कर्ष :

यद्यपि आलोच्य उपन्यासों की कथ्य-चेतना के भीतर इस अध्याय के निष्कर्ष भी है, तथापि बहुत संक्षेप में हम इनको परिगणित कर सकते हैं –

(1) 'भाषिक-संरचना' को समझने के लिए, किसी भी उपन्यास की कथावस्तु, चरित्र-सृष्टि और कथ्य-चेतना को समझना आवश्यक हो जाता है।

(2) 'राग दरबारी' व्यंग्यात्मक उपन्यासों का प्रतिमान है। लेखक उसे 'अनांचलिक' मानते है, पर उसकी प्रकृति 'आंचलिक' ही है। उपन्यास के केन्द्र में है 'शिवपालगंज' गांव और वहां के बासिन्दों का गंजहापन जिनकी नस-नस में समाया है हरामीपन, कांइयांपन, लुच्चई और लुख्खई। अतः भाषिक-रचाव भी उसी के अनुरूप है।

(3) 'मुझे चाँद चाहिए' एक नाटकीय उपन्यास है। उसकी पृष्ठभूमि कस्बाई और महानरीय है। नायिका-प्रधान उपन्यास है। उसकी नायिका वर्षा वसिष्ठ शाहजहांपुर के कस्बाई वातावरण से ऊपर उठकर एन.एस.डी. और बोलीवुड तथा होलीवुड में अपने अभिनय के झण्डे गाड़ती है। अतः उसकी भाषिक-संरचना में उनसे जुड़ी हुई शब्दावली का प्रयोग स्वाभाविक ही कहा जायेगा। यह एक 'संदर्भ-संपन्नता' का उपन्यास है। एक तरफ यह उपन्यास 'कला कला के लिए' वालों को प्रसन्न कर सकता है, वहा दूसरी ओर नारी-पहचान को व्याख्यायित करने वाली वर्षा वसिष्ठ के कारण सामाजिक सरोकारों के चाहक भी उसे पसंद कर सकते हैं। शाहजहांपुर जैसा कस्बाई यूपियन परिवेश जहां लड़की को 'नकुशा' (अनवोण्टेड का मराठी) माना जाता है, वहा से उठकर वर्षा नारी-अस्मिता को स्थापित करती है।

(4) 'काशी का अस्सी' एक अलग तरह का उपन्यास है। यहां बनारस के एक लोकेल 'अस्सी' को केन्द्र मे रखकर देश के पिछले तीस-चालीस साल के दुखद इतिहास के पन्नों को खंगाला गया है। 'राग दरबारी' में भी गाली-गलौज है, पर यहां तो उसकी इन्तिहा देखी जा सकती है। पर उपन्यास के बाह्य-क्लेवर में गाली-गलौज होते हुए भी उसके केन्द्र में है दर्द, वह पीड़ा, वह व्यथा जो देश के विरानेपन से व्यापी है। 'राग दरबारी' के लेखक को 'गंजहापन' से नफरत है, 'अस्सी' के लेखक को 'अस्सीपन' के समाप्त होने का दुःख है।

:: सन्दर्भानुक्रम ::

1. वह जो आदमी है न? : व्यंग्य-निबंध : हरिशंकर पारसाई।
2. कबिरा खड़ा बाज़ार में : व्यंग्य-निबंध-संग्रह : डॉ. पारूकान्त देसाई : 'में सिद्धान्तवादी हूं' नामक निबंध : पृ. 7 ।
3. राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल : पृ. 11 ।
4. हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास-परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : डॉ. पारूकान्त देसाई : पृ. 210-211 ।
5. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में व्यंग्य : डॉ. किशोरसिंह राव : पृ. 68 ।
6. 'आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. 127 ।
7. द्रष्टव्य : शैलेश मटियानी के आंचलिक उपन्यास : डॉ. प्रेमकुमारी : सिंह : भावना प्रका. पड़पड़गंज, दिल्ली ।
8. राग दरबारी : पृ. 175-176 ।
9. See : Salire : "The Critical Idion" : Arther Pollard : P. 31
10. राग दरबारी : पृ. 31 ।
11. See, Thought for today : Times of India : 17-08-11.
12. द्रष्टव्य : राग दरबारी : पृ. १९।
13. राग दरबारी : पृ. 10 ।
14. उद्धृत द्वारा : डॉ. पारूकान्त देसाई : चिंतनिका : पृ. 93 ।
15. राग दरबारी : पृ. 23 ।
16. वही : पृ. 92-93 ।
17. वही : पृ. 194-195 ।
18. वही : पृ. 50 ।
19. द्रष्टव्य : कस्तूरी कुण्डल बसै : मैत्रेयी पुष्पा : पृ. २१६
20. Memories & Portrail : Steavensons : P. 284
21. The Idia of Comedy : Meridith : 391

22. 'हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा' : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. 244 ।
23. वही : पृ. 245 ।
24. चिंतनिका : डॉ. पारूकान्त देसाई : पृ. 99 ।
25. चिंतनिका : पृ. 99-100 ।
26. The Rise of Novel : Ian Watt : P. 13
27. हिन्दी व्यंग्य के प्रतिमान : डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी : भूमिका से ।
28. संजीव : बात बोलेगी : हंस-सितम्बर-2010 : पृ. 95 ।
29. द्रष्टव्य : जून-जुलाई-2011 के सभी अख़बार ।
30. राग दरबारी : पृ. 50 ।
31. वही : पृ. 15 ।
32. द्रष्टव्य : पीली छत्रीवाली लड़की : उदयप्रकाश : पृ. 93 ।
33. राग दरबारी : पृ. 107 ।
34. वही : पृ. 334 ।
35. द्रष्टव्य : समीक्षायण : डॉ. पारूकान्त देसाई : पृ. 105 ।
36. हंस-जून-1994, हंस जुलाई – 1994 : पृ. क्रमशः 64, 94, 78-83, तथा 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास' : डॉ. देसाई का आलेख
37. मुझे चाँद चाहिए : सुरेन्द्र वर्मा : पृ. 39 ।
38. वही : पृ. 22 ।
39. वही : पृ. 66 ।
40. वही : पृ. 54 ।
41. वही : पृ. 86 ।
42. वही : पृ. 86 ।
43. वही : पृ. 93 ।
44. वही : पृ. 98 ।
45. वही : पृ. 112 ।
46. वही : पृ. 120 ।

47. वही : पृ. 126 ।

48. वही : पृ. 137 ।

49. वही : पृ. 286 ।

50. वही : पृ. 356 ।

51. वही : पृ. 407 ।

52. वही : पृ. 452 ।

53. वही : पृ. 495 ।

54. वही : पृ. 546 ।

55. वही : पृ. 549 ।

56. वही : पृ. 570 ।

57. वही : पृ. 570 ।

58. वही : पृ. 567 ।

59. वही : पृ. 93 ।

60. वही : पृ. 112 ।

61. द्रष्टव्य : 'हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास-परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास' : डॉ. पारूकान्त देसाई : पृ. 266 ।

62. 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास' : स – गुजरात प्राध्यापक परिषद : डॉ. देसाई का आलेख ।

63. मुझे चाँद चाहिए : पृ. 541 ।

64. वही : पृ. 28 ।

65. वही : पृ. 549 ।

66. वही : पृ. 97-98 ।

67. वही : पृ. 128 ।

68. See, An Introduction to the study of literature : Hudson : P. 144

69. मुझे चाँद चाहिए : पृ. 5 ।

70. वही : पृ. 126 ।

71. डॉ. पारूकान्त देसाई : डायरी से ।

72. मानसमाला : डॉ. पारूकान्त देसाई : पृ. 45 ।

73. आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी के विविध रूपों का चित्रण : डॉ. अज़हर ढेरीवाला : पृ. 187 ।

74. मुझे चाँद चाहिए : पृ. 567 ।

75. वही : पृ. 567 ।

76. आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी के विविध रूपों का चित्रण : डॉ. अज़हर ढेरीवाला : पृ. 187 ।

77. मुझे चाँद चाहिए : पृ. 97 ।

78. मुझे चाँद चाहिए : पृ. 97-98 ।

79. मुझे चाँद चाहिए : पृ. 112 ।

80. उर्दू शेरो-शायरी : सं. प्रकाश पंडित ।

81. मुझे चाँद चाहिए : पृ. 407 ।

82. वही : पृ. 349 ।

83. काशी का अस्सी : डॉ. काशीनाथ सिंह : उपन्यास के प्रथम फ्लेप से ।

84. द्रष्टव्य : वही : पृ. 17 और 168 ।

85. वही : पृ. फ्लेप से ।

86. वही : पृ. क्रमशः 7 ।

87. वही : पृ. 11-12 ।

88. वही : पृ. 16-18 ।

89. वही : पृ. 162 ।

90. वही : पृ. 152 ।

91. वही : पृ. 17 ।

92. वही : पृ. 18-19 ।

93. वही : पृ. 28 ।

94. वही : पृ. 70-71 ।

95. वही : पृ. 71 ।

96. वही : पृ. 71 ।

97. वही : पृ. 106-107 ।

98. वही : पृ. 118 ।

99. वही : पृ. 42 ।

100.

101. Seven Minutes : Iraving Wallece : P. 115 .

102. द्रष्टव्य : काशी का अस्सी : पृ. 28 ।

103. See, Novel and the people : Ralph fox : P. 20

104. मानसमाला : पृ. 54 ।

105. वही : पृ. 25 ।

106. See, Times of India : 17-08-11

107. काशी का अस्सी : पृ. 93-94 ।

108. काशी का अस्सी : पृ. 49 ।

109. काशी का अस्सी : पृ. 106 ।

110. काशी का अस्सी : पृ. 150-153 ।